छः एकांकी नाटक

सम्पादक व भूमिका लेखक
श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'
एम० ए०, साहित्यरत्न

गयाप्रसाद एण्ड संस
आगरा

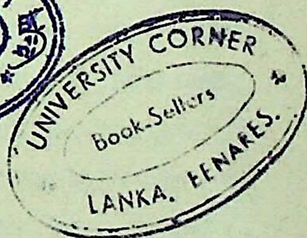
छः एकांकी नाटक

सम्पादक तथा भूमिका-लेखक

'साहित्यरत्न' प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र'

एम० ए०, (दर्शन, हिन्दी) एल-एल० बी०

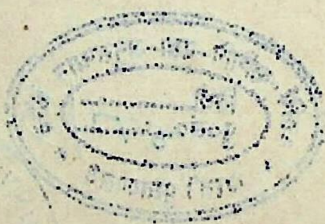




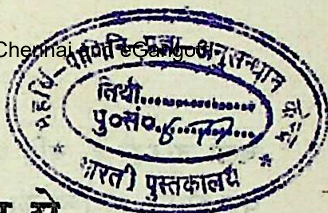
प्रकाशक

गया प्रसाद एण्ड संस, आगरा

१६५०]　　　　[मूल्य २)



मुद्रक—
जगदीशप्रसाद एम० ए०, बी० कॉम
दी एज्यूकेशनल प्रेस, आगरा ।



प्रकाशक की ओर से

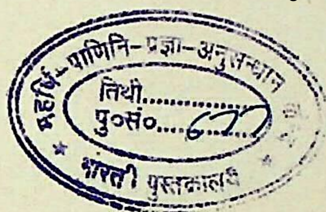
यह परम सौभाग्य का विषय है कि हमारी मातृ-भाषा-साहित्य के प्रत्येक अंग की अभिवृद्धि हो रही है तथा अपनी-अपनी शक्त्यनुकूल सभी उसकी श्रीवृद्धि में संलग्न हैं—क्या लेखक, क्या प्रकाशक। यह सभी जानते हैं कि विना प्रकाशक की उचित सहायता के, विना प्रकाशक-व्यवस्था के, लेखक-समुदाय उचितरीत्या साहित्य-सेवा नहीं कर सकता। उतना ही सत्य यह भी है कि लेखक की सहायता बिना प्रकाशक भी उचित दिशा में एक क़दम तक नहीं बढ़ा सकता। दोनों ही का चोली-दामन का साथ है। यह हर्ष का विषय है कि लेखक-गण के साथ-साथ अब प्रकाशक-वर्ग भी अपने उत्तरदायित्व को समझने और निभाने की ओर संलग्न हो उठा है। उसे अब यह ध्यान रहने लगा है कि किस दिशा में किस प्रकार का कार्य करने पर उद्देश्य-सिद्धि हो सकती है—द्रव्य-लाभ ही नहीं, वास्तविक उद्देश्य-सिद्धि। इसी कारण वह साहित्य के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का उद्घाटन भिन्न-भिन्न योग्य लेखकों से कराने लगा है। शिक्षा-विभाग ने इस दिशा में लेखक एवं प्रकाशक दोनों ही की भरपूर सहायता की है, अन्यथा हम जहाँ तक पहुँच सके हैं वहाँ तक पहुँचना शक्य न होता। सभी जानते हैं कि एकांकियों की माँग दिन पर दिन बढ़ती

चली जारही है, यदि प्रकाशक इस ओर क़दम न बढ़ावे तो वह अपने कर्त्तव्य का अपघात करेगा। इसी दृष्टिकोण से हमने एकांकी नाटकों का यह संकलन प्रस्तुत किया है। इस संकलन में एक नाटक संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार महाकवि भास का दिया गया है और एक 'भारतेन्दु' बाबू हरिश्चन्द का। शेष चार हिन्दी-एकांकीकारों को रचनाएँ हैं। यह चयन एकांकी-विकास के अध्ययन में विद्यार्थी का समुचित पथप्रदर्शन करे इसी उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है।

हमने इन नाटकों का सम्पादन हिन्दी-भाषा एवं साहित्य के सुयोग्य विद्वान् प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र', एम० ए० से कराया है, जो स्वयं भी प्रसिद्ध कहानी—लेखक तथा एकांकी नाटकों के रचयिता हैं। योग्य सम्पादक ने सम्पादन के अतिरिक्त तद्विषयक भूमिका भी साथ में जोड़ दी है, जिससे एकांकी के रचना-नियमों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त की जा सकेगी। पुस्तक को इस प्रकार उपादेय बनाने के हेतु वे अनेकानेक धन्यवाद के पात्र हैं। पर उनसे भी पूर्व धन्यवाद के पात्र हैं वे लेखकगण जिनकी अमूल्य कृतियों को इस संकलन में स्थान दिया गया है।

आशा है हमारा यह प्रयत्न सफल समझा जायगा और इसे अपना कर हमारी उत्साह-वृद्धि की जायगी।

—प्रकाशक।

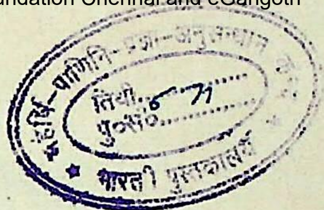


दो प्रस्तुत संग्रह

में आरम्भ के दो नाटक प्राचीन संस्कृत परिपाटी पर निर्मित हुए हैं, जिनमें से प्रथम तो एकांकी है ही, यदि उपर्युक्तानुसार श्री भारतेन्दु 'हरिश्चन्द्र' के प्रहसन "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" के अंकों को दृश्य मान लिया जाय तो वह भी उनके कुछ अन्य ऐसे ही नाटकों के साथ एकांकी रूप ले लेता है; यही कारण है कि उसे भी इस संकलन में सम्मिलित कर लिया गया है। शेष सभी एकांकी नाटक आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली पर लिखे गये हैं। इसी कारण हमने दोनों ही प्रकार की नाटक-रचना-प्रणाली पर यत्किंचित् प्रकाश डाला है। अब जब कि एकांकी नाटकों का युग हिन्दी में भी आ चला है प्राचीन और नवीन, संस्कृत तथा हिन्दी नाटकों का यह संकलन अध्ययन के हेतु उचित दिशा का निर्देश करेगा, ऐसी आशा है।

—सम्पादक





विषय-सूची



भूमिका

हिन्दी एकांकी नाटक का उदय

हिन्दी-साहित्य में लगभग इन दो दशाब्दियों से एकांकी नाटकों का चरचा चल पड़ा है, कुछ तो युग की आकांक्षा की पूर्ति-अर्थ और कुछ वाह्य प्रभाव-वश। आज के व्यस्त समाज के पास इतना समय नहीं जो वह रात-रात भर जाग कर नाटकघर में नाटक देखता रहे और सूर्योदय होने पर सीधा दफ्तर का रास्ता नापे। यों कार्य-वाहुल्य एवं व्यस्त जीवन ने नाटकों को छोटा होने पर बाध्य किया है। इस प्रवृत्ति-वश जहाँ साहित्य के अन्य अंग विना प्रभावित हुए न रहे वहाँ नाटक अछूता किस प्रकार रह जाता। सिनेमा और रेडियो का भी इस विषय में पर्याप्त हाथ है। नाटक को शिक्षा का माध्यम न जानें कब से माना जाता रहा है। आज इसी उद्देश्य की पूर्ति-अर्थ रेडियो-द्वारा छोटे-छोटे नाटक ब्राडकास्ट किये जाते हैं। अनेक शिक्षण-संस्थाएँ भी, शिक्षा के उद्देश्य से कहिए अथवा अभिनय-कला का ज्ञान कराने के उद्देश्य से, छोटे-छोटे नाटकों की अपेक्षा करती हैं। सिनेमा के प्रभाव-वश नाटक-कम्पनियों का युग बीत जाने पर यदि मूल नाट्य-प्रथा को जीवित रखना है तो अनेक संस्थाओं को अल्प व्यय,

श्रम एवं द्रव्य साध्य छोटे-छोटे नाटकों के अभिनय को अपनाना ही होगा। इन्हीं कारणों वश छोटे-छोटे नाटक लिखने की ओर प्रवृत्ति बढ़ चली है, यहाँ तक कि अब एकांकी नाटक को विशेष रूप से अपनाया जाने लगा है। जैसा कि आरम्भ में ही कहा गया है अंग्रेज़ी आदि बाह्य साहित्य का प्रभाव भी इस विषय में पर्याप्त मात्रा में पड़ा है।

एकांकी प्रणाली का विरोध

इस प्रवृत्ति-प्रसार के साथ ही क्षीण स्वर में कुछ एकांकी नाटक के विरोध में भी कभी-कभी सुनने को मिल ही जाता है। प्रसिद्ध नाटककार एवं कहानी-लेखक श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार ने एक बार यह प्रश्न उपस्थित किया था कि एकांकी नाटक को साहित्य में कोई स्थान दिया भी जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने स्वयं यह दिया था कि अभी तक न तो एकांकी नाटक साहित्य में परिगणित होने योग्य ही अपने को प्रमाणित कर सका है, भविष्य की कौन कहे, और न उसकी पृथक् सत्ता की आवश्यकता ही प्रतीत होती है। जिस बात को कहानी-द्वारा कहा जा सकता है उसके हेतु 'एकांकी नाटक' नामक एक साहित्य-प्रकार की अपेक्षा ही क्या ? इस विषय में हमारा तो इतना ही नम्र निवेदन है कि आज चाहे एकांकी नाटक को साहित्य में परिगणित किये जाने के विषय में शङ्का भले ही प्रस्तुत की जाने लगी हो, वह

तो कई सहस्राब्दियों पूर्व अपने अस्तित्व की आवश्यकता का अनुभव करा चुका है। न जानें संस्कृत के समृद्धि-काल में कितने एकांकी नाटक बने और न जानें उन्हें लेकर कितने लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण हुआ।

कहानी और एकाङ्की

कहा जाता है कहानी के रहते एकांकी की अपेक्षा ही क्या? पर कहानी का अस्तित्व साहित्य के किस प्रकार में निहित नहीं है? जीवन स्वयं एक कहानी है और जब तक साहित्य का सम्पर्क मानव-जीवन से है और उसका उद्देश्य मानव-जीवन की अभिव्यक्ति करना है, तब तक साहित्य के प्रत्येक प्रकार पर कहानी अपनी छाप बिठाये रहेगी। किसी कहानी को श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करना एक बात है और एकांकी नाटक का अभिनय के हेतु प्रणयन दूसरी बात। कहानी, चाहे वह वार्त्तालाप-प्रधान ही क्यों न लिखी जाय, एकांकी नाटक का स्थान कदापि ग्रहण न कर सकेगी। अभिनय की क्षमता वह कहाँ से लाएगी अपने में. वह तो श्रव्य काव्य मात्र है। अभिनय का उसमें अभाव रहेगा, अतः सजीवता उसमें न आ सकेगी; दूसरे कहानी का वार्त्तालाप निश्चय ही एकांकी नाटक के वार्त्तालाप से भिन्न होगा। कारण स्पष्ट ही है—कहानी श्रव्य काव्य है, एकांकी नाटक दृश्य काव्य। इस भेद की अवहेलना करने वाला तथा दृश्य काव्य को मिटा कर उसका स्थान श्रव्य काव्य को देने वाला व्यक्ति

ही एकांकी नाटक के अस्तित्व को विनष्ट कर उसका स्थान कहानी को देने को भले ही उद्यत हो जाय; अन्य से ऐसी आशा नहीं। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। कहानी को पढ़ते समय तीस मिनट से अधिक का समय अपेक्षित नहीं; फिर जिस कथा-वस्तु को अधिक समय की अपेक्षा है उसके हेतु एकांकी नाटक की सृष्टि क्यों न की जाय ? संघर्ष का अभाव तो कभी-कभी कहानी में भी रहता ही है। फिर उसके अस्तित्व पर आक्रमण क्यों नहीं किया जाता ? बारीकी से देखा जाए तो कहानी तथा एकांकी नाटक की कथा-वस्तुओं, उनकी प्रकृतियों तथा उनके व्यक्त करने के ढंगों और बंधेज (Technique) में मौलिक अन्तर होता है। कहानी की कथा-वस्तु कहानी ही दे सकेगी और एकांकी की कथावस्तु एकांकी। एकांकी को कहानी का और कहानी को एकांकी का रूप देने वाले फर्स्टक्लास में फ़ेल हुए हैं। साहित्य-सृष्टि में एकांकी नाटक अपना निजी स्थान है और उस स्थान की पूर्ति साहित्य के किसी अन्य अंग द्वारा किसी प्रकार से नहीं हो सकती।

प्राचीन एकाङ्की

एकांकी नाटक के अस्तित्व की अक्षुण्णता प्राचीन काल के नाट्य शास्त्रों से भी प्रमाणित है और उनसे यह भी स्पष्ट है कि साहित्य में उसका क्या स्थान है। "काव्येषु नाटकं परमं रम्यम्" कह कर नाटक को काव्य में सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया गया है। हमारे आचार्यों ने काव्य के दो भेद किये हैं—

श्रव्य और दृश्य। दृश्य काव्य अभिनयाश्रित होता है। इसी दृश्य काव्य के दो विभाग माने गये हैं—रूपक और उपरूपक, रूपकों के दस प्रकार (अर्थात् नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथी तथा प्रहसन) और उपरूपक के १८ प्रकार (अर्थात् नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्य रासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश एवं भाणिका) माने गये हैं। दस प्रकार के रूपकों में से भाण, व्यायोग, अङ्क तथा बीथी तथा १८ प्रकार के उपरूपकों में से गोष्ठी, नाट्य शासक, उल्लाप्य, प्रेंखण, रासक, श्रीगदित, विलासिका हल्लीश तथा भाणिका, अर्थात् कुल मिला कर तेरह प्रकार एकांकी नाटकों के माने गये हैं। एकांकी नाटकों के यह भेद कथानक, नायक, उपनायक, नायिका, रस-स्थापना आदि को दृष्टिगत रखते हुए किये गये हैं। इससे यह स्पष्ट है कि एकांकी नाटक की परम्परा अति प्राचीन है तथा नाटक (अर्थात् रूपक और उपरूपक) का प्रकार होने के नाते काव्य में उसे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता रहा है। दृश्य काव्य में सभी कलाओं के एकीकरण के कारण ही उसे काव्य में उच्चतम स्थान दिया गया है, इसी कारण आज सिनेमा को भी तो वही स्थान प्राप्त है, फिर उसका उपभेद होने के कारण एकांकी नाटक उस महत्व का भागी क्यों न हो।

संस्कृत नाट्य नियम

एकांकी नाटक के रचना-नियमों पर हम पौर्वात्य एवं पाश्चात्य दोनों ही दृष्टिकोणों से विचार करेंगे। एकांकी नाटक से तात्पर्य है वह अभिनय योग्य दृश्य काव्य जो एक ही अंक में समाप्त हो जाय। इस परिभाषा में 'अंक' के समझाने की अपेक्षा बनी रही। नाटकीय कथा-वस्तु को कई विभागों में विभाजित कर प्रस्तुत किया जाता हैं, जिनमें के प्रत्येक को अंक संज्ञा प्रदान की गई है। अंक का लक्षण करते हुए साहित्य-दर्पणकार ने लिखा है—"अंक में नेता का चरित प्रत्यक्ष होना चाहिए। रस और भाव पूर्ण हों। गूढ़ार्थक शब्द न हों। छोटे-छोटे चूर्णक विना समास के गद्य होने चाहिए। अंक में अवान्तर कार्य तो पूरा हो जाना चाहिए, किन्तु विन्दु लगा रहना चाहिए—अर्थात् प्रधान कथा की समाप्ति न हो जानी चाहिए। बहुत कार्यों से युक्त न हो और बीज का उपसंहार न हो..........।" एक से अधिक अंकों से युक्त रूपक अथवा उपरूपक में अंक की स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है। एकांकी नाटक में तो आरम्भ से पर्यवसान तक की सम्पूर्ण स्थितियाँ लाना अपेक्षित होगा, जीवन-प्रवाह के जिस अंग को दिखाना अभीप्सित हो उसे सम्यक्रूप से दिखाना आवश्यक होगा। उतने ही में चरित्र का अपेक्षित विकास भी दिखा देना आवश्यक है। रस एवं भाव की पूर्णता भी उतनी ही अपेक्षित है। विना किसी उद्देश्य-लाभ पर दृष्टि रखे तो

एकांकी नाटक रचना असम्भव ही है, अतः आरम्भ से अन्त तक कथा-वस्तु उद्देश्य-लाभ की ओर अग्रसर होती हुई होनी योग्य है।

एकांकी नाटक के उपर्युक्त तेरह प्रकारों के विषय में ज्ञानार्जन से पूर्व भारतीय नाट्य प्रणाली के विषय में कुछ जान लेना परमावश्यक है। मुख्य नाटक आरम्भ होने से पूर्व संस्कृत नाटकों में कुछ और भी आवश्यक है। आरम्भ में किसी पात्र द्वारा प्रार्थना अथवा आशीर्वाद से युक्त काव्य का पाठ होता है, जिसे नान्दी कहते हैं। नान्दी की समाप्ति पर सूत्रधार अथवा प्रस्थापक, सामाजिकों को अभिनय किये जाने वाले नाटक, उसके रचयिता और उसकी कथा-वस्तु का परिचय देता है और कभी कभी तो नाटक के बीज को किसी न किसी प्रकार लक्षित करा देता है। उसके हटते ही मुख्य अभिनय का आरम्भ हो जाता है। नान्दी तथा मुख्य अभिनय के बीच के क्रिया-कलाप को 'प्रस्तावना' कहा जाता है। मुख्य रूपक की कथावस्तु का संघटन विशेष नियमों के अधीन होता है। वैसे तो साधारण नियम यह हैं कि मुख्य तथा गौण कथा वस्तु का यथापेक्ष्य रूप से संगुफन किया जाय। भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटकीय प्रयोजन सिद्धि के हेतु पाँच प्रकार की अर्थ प्रकृतियाँ मानी गई हैं-- बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। "जिसका पहले अत्यल्प कथन किया जाय, किन्तु विस्तार उसका अनेक रूप से हो, उसे बीज कहते हैं।" मुख्य कथा-वस्तु बीज से ही आरम्भ

होती है। यदि बीच में गौण अथवा अवांतर कथा से संयोग हो जाय तो "अवांतर कथा के विच्छिन्न हो जाने पर भी प्रधान कथा से अविच्छेद का जो निमित्त है उसे बिंदु कहते हैं। इस प्रकार बिंदु के द्वारा कथा-वस्तु अप्रतिहत बनी रहती है। कभी-कभी अवांतर कथा दूर तक व्याप्त हो जाती है उसे पताका कहते हैं, पर प्रसंगागत और एकदेश-स्थित चरित को प्रकरी कहते हैं। "जो प्रधान साध्य है, सब उपायों का आरम्भ जिसके लिए किया गया है, जिसकी सिद्धि के लिये सब सामग्री इकट्ठी हुई है उसे कार्य कहते हैं।" तात्पर्य यह है कि बीज से आरम्भ होकर बिंदुओं द्वारा सम्बद्ध हो सुगठित रहती हुई कथावस्तु एकदेश-स्थित चरितों (प्रकरियों) तथा दूर तक व्याप्त अवांतर कथाओं (पताका) को निभाती हुई कार्य तक पहुँचनी चाहिए।

रूपक में आरम्भ से उद्देश्य-लाभ तक के कार्य की पाँच अवस्थाएँ कही गई हैं—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। उद्देश्य-सिद्धि के लिए जो औत्सुक्य होता है उसे आरम्भ कहते हैं। इसके पश्चात् फल-प्राप्ति के लिये जो त्वरायुक्त व्यापार किया जाता है उसे यत्न की संज्ञा प्रदान की गई है। यत्न के परिणाम-रूप जहाँ आशंकाओं के रहते हुए भी प्राप्ति की सम्भावना होने लगे वहाँ प्राप्त्याशा की अवस्था कही जाती है। विघ्नों के विदूरित हो जाने से जो निश्चित प्राप्ति है उसे नियताप्ति कहते हैं और जहाँ संपूर्ण फल की

प्राप्ति हो जाय वहाँ फलागम की अवस्था मानी गई है। इस प्रकार फल को दृष्टिगत रख कर आरम्भ किये हुए कार्य में यत्नवान होकर, संघर्ष और विरोध का सामना कर तथा उसे किंचित् दबा कर प्राप्त्याशा की अवस्था प्राप्त होती है। उसके पश्चात् संघर्ष का अन्त करते हुए नियताप्ति और पश्चात् पूर्ण फलागम होता है।

कथा-वस्तु के संघटन के हेतु उक्त अर्थ-प्रकृतियों एवं कार्य की अवस्थाओं पर ध्यान रखने के अतिरिक्त संधि-निमयों पर भी ध्यान रखा जाता है। एक प्रयोयन में अन्वित अर्थों के अवान्तर सम्बन्ध को संधि कहते हैं। यह संधियाँ भी पाँच प्रकार की कही गई हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण। "जहाँ अनेक अर्थ और अनेक रसों के व्यंजक बीज की आरम्भ नामक दशा के साथ संयोग से उत्पत्ति हो उसे मुख संधि कहते हैं। मुख संधि में निवेशित फल-प्रधान उपाय का कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य विकास जहाँ हो वहाँ प्रतिमुख संधि होती है। पूर्व संधियों में कुछ-कुछ प्रकट हुए फल-प्रधान उपाय का जहाँ ह्रास और अन्वेषण से युक्त बार-बार विकास हो उसे गर्भ संधि कहते हैं। जहाँ मुख्य फल का उपाय गर्भ संधि की अपेक्षा अधिक उद्भिन्न हो, किन्तु शापादि के कारण विघ्न-युक्त हो वहाँ विमर्श संधि होती है। बीज से युक्त मुखादि संधियों में बिखरे हुए अर्थों का जहाँ एक प्रधान प्रयोजन में यथावत समन्वय साधित किया जाय उसे निर्वहण संधि कहते

हैं। इसी प्रकार संध्यंग, गुण, अलंकार आदि के नियमों के सन्निवेश के कारण यह विषय बहुत-ही जटिल बन गया है।

कथा-वस्तु तथा नायक का अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। कथा-वस्तु जहाँ नायक-द्वारा निर्मित होती है वहाँ वह उस के चरित्र-चित्रण में पूर्ण रूप से हित साधन करती है। नायक के अतिरिक्त उपनायक अथवा प्रतिपक्षी का होना भी आवश्यक ही है। शृंगार-प्रधानादि नाटकों में नायिका भी परमावश्यक है। पर नाटकों में नायक पर विशेष बल दिया गया है। स्वभाव के अनुसार उसके चार भेद किये गये हैं—धीरोदात्त, धीर-ललित, धीरोद्धत तथा धीर प्रशांत। नाटक के लिए रस परमावश्यक है।

यहाँ तक कि रस-सिद्धान्त का विवेचन सव-प्रथम नाट्य शास्त्र में ही किया गया और पश्चात् उसे सम्पूर्ण काव्य के क्षेत्र में नियोजित किया गया। नाटक में शांत रस को छोड़ कर शेष आठ रस परिगणित होते हैं। नाटक की समाप्ति पर आशीर्वादात्मक वाक्य रहता है, जिसे भरत वाक्य कहते हैं। एक बात ध्यान देने योग्य और भी है। नाटक के अभिनय में कुछ दृश्यों का प्रत्यक्ष दिखाना वर्जित है, जैसे "दूर से आह्वान, वध, युद्ध, राज्यविप्लव, देशविप्लवादि, विवाह, भोजन, शाप मलत्याग, मृत्यु, मरण, दन्तक्षत, नखक्षत तथा शयन, अधरपानादिक लज्जाकारी कार्य, नगरादि का घेरा, स्नान, चन्दनादि लेपन।" इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्रों में

नाटकों की भाषाशैलियों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

प्राचीन संस्कृत एकांकियों का रूप

नाटक निर्माण की साधारण एवं आरम्भिक बातें देकर अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि भारतीय परिपाटी के अनुसार उपरिलिखित तेरह प्रकार के एकांकी नाटकों की क्या रूपरेखा आचार्यों ने बतलाई है। हम भाण, व्यायोग, अंक, वीथी, गोष्ठी, नाट्यरासक, उल्लाप्य, प्रेंखण, रासक, श्री गदित, विलासिका, हल्लीश तथा भाणिका में से अब प्रत्येक पर क्रमशः विचार करेंगे।

भाण वह एकांकी नाटक होता है जो धूर्त्तों के चरित से युक्त तथा अनेक अवस्थाओं से व्याप्त होता है। इसमें अकेला विट रंगमंच पर अपनी अथवा औरों की अनुभूत बातों को प्रकाशित करता है। वह इस प्रकार प्रकट करता है जैसे आकाश से उसके प्रति कोई प्रश्न कर रहा हो। 'क्या कहा' आदि कह कर वह प्रश्न को दुहराता फिर उसका उत्तर देता हुआ अभिनय करता है। इसकी कथा कल्पित होती है और वृत्ति प्रायः भारती (कहीं-कहीं कैशिकी) होती है। इसमें मुख और निर्वहण संधियाँ होती हैं तथा दसों लास्यांग होते हैं। व्यायोग में कथा इतिहास-प्रसिद्ध होती है। स्त्री पात्रों की विरलता रहती है। गर्भ और विमर्श संधियों से हीन तथा बहुत

पुरुषों से आश्रित यह होता है। इस में भी एक ही अंक होता है और युद्ध स्त्री के कारण नहीं होता। इसका नायक प्रख्यात धीरोद्धत राजर्षि अथवा दिव्य पुरुष होता है। हास्य, शृङ्गार एवं शांत इनको छोड़ कोई भी रस इसमें प्रधान होता है। 'मध्यम-व्यायोग' पर इन लक्षणों की दृष्टि से विचार करना मनोरंजक होगा।

अंक नामक एकांकी नाटक में साधारण पुरुष नायक होते हैं। करुण स्थायी रस होता है, स्त्रियों के विलाप का आधिक्य रहता है। कथा इतिहास-प्रसिद्ध होती है। संधि, वृत्ति और लास्यांगों में यह भाण की ही भाँति होता है। वीथी में कोई एक पुरुष नायक कल्पित कर लिया जाता है। आकाश-भाषित के द्वारा उक्ति-प्रत्युक्ति होती हैं। इसमें मुख और निर्वहण संधियाँ होती हैं, किंतु अर्थ-प्रकृतियाँ सभी होती हैं। शृंगार-रस-प्रधान होने से कैशिकी वृत्ति प्रधान रहती है। उक्त चार रूपकों के अतिरिक्त प्रहसन भी एकांकी लिखे जाते हैं, जिन्हें संकीर्ण प्रहसन कहते हैं।

उपरूपकों में सर्व-प्रथम एकांकी गोष्ठी होता है। नौ या दस प्राकृत पुरुषों से युक्त, उदात्त वचनों से रहित, कैशिकी वृत्तिवाली गोष्ठी होती है। इसमें गर्भ और विमर्श संधि नहीं रहतीं। पांच-छः स्त्रियाँ भी रहती हैं। यह शृंगार-प्रधान होती है। नाट्यरासक में लय और ताल बहुत होते हैं। नायक उदात्त होता है। पीठमर्द उपनायक होता है, शृंगार-सहित

हास्यरस अंगी होता है, नायिका वासकसज्जा होती है। इस में मुख और निर्वहण सन्धि तथा दस लास्यांग होते हैं। जिसमें नायक धीरोदात्त हो, कथा दिव्य हो, शिल्पक के अंग तथा हास्य, शृंगार और करुण रस हों उसे उल्लाप्य कहते हैं। काव्य नामक एकांकी उपरूपक आरभटी वृत्ति रहित हास्य रस से व्याप्त होता है। इसमें नायक और नायिका दोनों उदात्त होते हैं तथा मुख, प्रतिमुख एवं निर्वहण संधि से युक्त होता है। प्रेंखण नायिका हीन होता है, गर्भ और विमर्श संधियाँ नहीं होतीं, सूत्रधार, विष्कम्भक और प्रवेशक नहीं होते। युद्ध, सम्फेट और सब वृत्तियाँ होती हैं। नांदी और प्ररोचना नेपथ्य में पढ़ी जाती हैं। रासक में पाँच पात्र होते हैं, मुख और निर्वहण संधियाँ होती हैं। यह भाषा और विभाषाओं से युक्त भारती तथा कैशिकी वृत्तियों सहित, सूत्रधार से रहित, एक अंक वाला वीथ्यंग और कलाओं से युक्त होता है। इसमें नांदी श्लिष्ट होती है, नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख होता है। यह उत्तरोत्तर उदात्त भावों से युक्त होता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध कथा वाला, एक अंक से युक्त, प्रसिद्ध धीरोदात्त नायक से युक्त, प्रख्यात नायिका वाला उपरूपक श्रीगदित कहाता है। कहते हैं कि लक्ष्मी का रूप रखकर नायिका इसमें कुछ गाती भी है। विलासिका में शृंगार की बहुलता रहती है, गर्भ और विमर्श सन्धियाँ इसमें नहीं होतीं, नायक हीन गुणवाला होता है, विदूषक भी इसमें रहता है। हल्लीश में उदात्त वचन बोलने वाला एक पुरुष

तथा आठ दस स्त्रियाँ रहती हैं। उज्वल कैशिकी वृत्ति होती है। इसी प्रकार से भाणिका भी एकांकी से युक्त होती है।

ऊपर तेरह प्रकार के एकांकी नाटकों का परिचय-मात्र कराया गया है, जिससे इतना स्पष्ट है कि रूपकों के नाटक, प्रकरण, आदि बड़े भेदों में अर्थ-प्राकृतियाँ, कार्य-अवस्थाओं एवं सन्धियों का प्रयोग जितना अधिक होता है उतना एकांकी नाटकों में नहीं। इसका कारण यह है कि एकांकी नाटक की कथा-वस्तु छोटी होती है, जीवन का एक छोटा-सा अंश-मात्र-इसी कारण पात्र, रसादि में भी उतनी व्यापकता नहीं रहती। गर्भ एवं विमर्श सन्धियाँ, जिनके कारण कथा-वस्तु को प्रसार प्राप्त होता है अधिकांशतः नहीं ही रहती।

आधुनिक एकांकी का उदय

अब वह प्राचीन युग नहीं रह गया है। हमारे साहित्य के प्रत्येक प्रकार पर वाह्य प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ रहा है, अतः अनेक साहित्य-प्रकारों को अपनी पूर्व दिशाओं का परित्याग करना पड़ रहा है। आज-कल जो एकांकी नाटक लिखे जा रहे हैं उन पर पाश्चात्य नाटक रचना-नियमों (Technique) की विशेष छाप रहती है। अतः आवश्यक है कि हम पाश्चात्य एकांकी नाटक रचना के नियमों पर भी यत्किंचित् प्रकाश डालें। यद्यपि पंद्रहवीं-सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में इटली तथा अन्य यूरोपीय देशों में Commedia Tell' Arte

जैसे छोटे नाटक लिखे जाते थे जो एकांकी होते थे, इंग्लैण्ड में ड्रामा का उदय जिन मिस्ट्री, मिरेकिल तथा मॉरेलिटी ड्रामों तथा इण्टरल्यूज़्स से हुआ वे भी एकांकी ही होते थे, सत्रहवां तथा अठारहवीं शताब्दी में जो अफ्टर पीसेज़ लिखे जाते थे, बिक्टोरिया युग में जो करटेन रेजर्स तैयार किये जाते थे वे सभी एकांकी होते थे, तथापि आधुनिक एकांकी नाटक का उदय इबसन से बीसवीं शताब्दि में हुआ। एक तो युग की छाप-वश साहित्य-क्षेत्र में नवीनता की अपेक्षा थी, दूसरे बड़े नाटक देखने की इन दिनों फ़ुरसत भी कहाँ, तीसरे पिछली दो-तीन शताब्दियों में नाटक का क्षेत्र बहुत गिरावट को प्राप्त हो चुका था, अतः इबसन द्वारा प्रस्तुत किये नये इस नवीन आयोजन का भरपूर स्वागत किया गया। इबसन ने अपने नाटकों में दैनिक जीवन की आलोचना प्रस्तुत की, अतः मानव स्वभाव का अध्ययन, रूढ़ियों की आलोचना तथा अनेक समस्याओं का सुलझाना यह बातें उसके नाटकों में मुख्यतः रहने लगीं। उसने नाटकों को यथार्थवाद की ओर लगा दिया। उसने अपने नाटक गद्य में लिखे, रंगमंच की सजधज भी कम करदी तथा उसकी कमी को निर्देशों को व्यापकता प्रदान कर पूरा किया गया।

रचना-नियम

अरस्तू ने ड्रामा के पाँच मुख्य अंग माने हैं—कथावस्तु, चरित्र चित्रण, वार्त्तालाप, बिचार तथा दर्शनीयता। इन पाँचों

ही दृष्टियों से एकांकी नाटक बड़े नाटकों से भिन्न अपनी निजी विशेषता एवं सत्ता रखता है। कथावस्तु को ही लें तो उसमें समग्र जीवन का चित्रण नहीं रहता, जीवन की किसी व्यापक घटना का चित्रण भी असम्भव ही है। वह तो जीवन को किसी एक विशेष स्थिति में रख कर उसका चित्रण करता है। पर जितना भी चित्रण किया जाता है वह अपूर्व और संदिग्ध नहीं होता। नाटककार उतने को ही पूर्ण रीत्या अभिव्यक्त करता है तथा यह भी व्यक्त कर देता है कि वह जीवनांश सम्पूर्ण जीवन का एक अंश अवश्य है। 'प्रसाद' जी ने 'चन्द्रगुप्त' में जीवन के जिस व्यापक रूप को 'प्रस्तुत' किया है उसकी आशा प्रो० वर्मा के 'उषा' से नहीं की जा सकती। पर 'उषा' में जितना कुछ भी है पूर्ण है। एकांकी नाटक ने पश्चिम में अनेक प्रकार ग्रहण कर लिये हैं। उसकी कथावस्तु को या तो एक ही दृष्य में समाप्त कर दिया जा सकता है, जैसा कि 'उषा' में किया गया है अथवा दो या तीन दृश्यों में उसे विभाजित किया जा सकता है इस दृष्टि से प्राचीनों के कई ऐसे नाटक जो एकांकी नहीं हैं, एकांकी की कोटि में आ जाते हैं जैसे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के कई एक नाटक। एकांकी नाटक में कथावस्तु सीधे सादे केन्द्रित ढङ्ग से, सभी अनावश्यक बातों का परित्याग करते हुए प्रस्तुत की जाती है। छोटे से नाटक में कथावस्तु को सुगठित इकाई के रूप में बनाये रखने के लिए यह परमावश्यक

है कि उसके साथ अन्य बातें न घसीटी जावें। कथावस्तु में चार बातें आवश्यक मानी गई हैं—आरम्भ (exposition) संघर्ष (crisis) चरसांत (climax) तथा फलागम (denovement) इनमें प्रथम का तो जैसे कि एकांकी नाटक में अभाव ही रहता है। संघर्ष आरम्भ कर शीघ्र ही उसे चरमांत या पराकाष्ठा पर पहुँचा देते हैं और पश्चात् denovement अर्थात् फलागम की स्थिति आ जाती है। कुछ नाटकों में तो crisis और climax की भी आवश्यकता नहीं समझी जाती।

कथा-वस्तु के लघु होने से चरित्र-चित्रण के लिए भी उतनी गुञ्जायश नहीं रहती, न अधिक चरित्रों को ही उपस्थित किया जा सकता है। कहीं-कहीं तो दो पात्र ही पर्याप्त समझे गये हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि चरित्र-चित्रण का अभाव ही रहता हो। चरित्र की एक ऐसी झाँकी दी जाती हैं कि व्यक्ति के सम्पूर्ण चरित्र का अनायास ही अनुमान लगाया जा सकता है।

अब Diction अर्थात् कथनोपकथन अथवा वार्त्तालाप को लीजिए। आज के एकांकी नाटक की यह विशेषता है कि उसका वार्त्तालाप व्यंजना-पुष्ट, सूक्ष्म, पर प्रभाव-पूर्ण हो। अब जब कि नाटक गद्य में लिखे जाने लगे हैं तब तो इसकी और भी अपेक्षा है। एक-एक शब्द आवश्यक हो और चुन-चुन कर रखा जाय।

नाटककार कोई सन्देश देना चाहता है वही नाटक का

Motif (उद्देश्य) कहलाता है। अरस्तू ने उसे ही Thought की संज्ञा प्रदान की है। इसके होते हुए नाटक सुगठित इकाई के रूप में आ जाता है। इसके रहते अनावश्यक प्रसंग नहीं आ सकते, कथावस्तु कटी-छटी रहती है। पाश्चात्य नाट्य-रचना-प्रणाली में कथावस्तु के संघटन के लिए तीन समकक्ष सिद्धांतों (Three Unities) की प्राचीन युग में अपेक्षा की जाती थी, पर अव्यावहारिक होने के कारण देश तथा काल के समन्वय सिद्धान्त का परित्याग कर दिया गया, केवल कार्य वाला सिद्धान्त शेप रह गया। पर एकांकी नाटक में तीनों सिद्धान्तों का निभाव हो जाता है। आधुनिक युग के एकांकी की नाटक के अन्तिम अंग Spectacle दर्शनीयता से जैसे कि दुश्मनी हो। एकांकी शिक्षणालयों या शौकिया अभि-नय करने वालों के लिए लिखे जाते हैं, इस कारण वह व्यय-साध्य बातों से बचाये जाते हैं। यही कारण है कि रंग-मञ्च की सजावट उनके हेतु अपेक्षित नहीं। इतना अवश्य है कि नाटककार अपने निर्देशों को इतना व्यापक और पूर्ण बनाता है कि सजावट की कमी नहीं अखरती अपितु निर्देशानुकूल कार्य करने से अभिनय को सजीवता मिल जाती है। एकांकी से एकांतकथन तथा स्वगत का भी बहिष्कार कर दिया गया है। वैसे तो कई एकांकियों का आरम्भ एकान्तकथन से ही हुआ मिलता है।

संस्कृतकालीन तथा आधुनिक एकांकी

उपर्युक्त दोनों प्रकार के एकांकी नाटकों की रचना-प्रणा-

लियों पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि संस्कृत नाट्य शास्त्रोल्लिखित नियम बहुत जटिल हैं और वर्त्तमान-कालीन पाश्चात्य नियम उतने जटिल नहीं। वर्त्तमान एकांकी दर्शनीयता (Spectacle) का बहिष्कार कर चुका है, पर संस्कृत एकांकियों में यह बात नहीं। वर्त्तमान एकांकी में नाटकीय संकेतों को विशेष महत्त्व प्रदान किया जाता है, यह बात संस्कृत काल के एकांकियों में न थी। आज के एकांकी संकेत लम्बे और व्यापक होते हैं। नांदी मंगलाचरण प्रस्तावना, भरत-वाक्य आज के एकांकी में नहीं रहते। एकांत-कथन तथा स्वागत का भी वह गौरवपूर्ण स्थान नहीं रह गया है। वर्त्तमान एकांकी में एकांकी संधियाँ नायक-नायिका एवं कथानकों आदि के प्राचीन नियमों का परित्याग हो गया है। वर्जित दृश्यों के नियम भी अब मान्य नहीं रहे। वर्त्तमान एकांकी जीवन के जितना निकट है। उतना प्राचीन संस्कृत सम्बन्धी न था।

हिन्दी एकांकी प्रणेता

वर्त्तमान हिन्दी में एकांकी का उदय नितान्त आधुनिक एवं पाश्चात्य कलानुमोदित है। यद्यपि भारतेन्दुजी ने कई ऐसे नाटकों की रचना की जिन्हें एकांकी कहा जा सकता है, पर उन पर प्राचीन परिपाटी का प्रभाव होने के कारण वर्त्तमान एकांकी-प्रणाली के नियम लागू नहीं होते। आपके पश्चात् पं० बद्रीनाथ भट्ट ने कुछ छोटे प्रहसन लिखे। वर्त्तमान युग में

आकर श्री 'प्रसाद' जी को हम 'एक घूँट' में सफल एकांकी नाटककार के रूप में देखते हैं। पं० गोविन्दवल्लभ पन्त तथा श्री० सुदर्शन जी ने भी सफल एकांकी रचना की, पर प्रगतिशीलता के अभाव में वे भविष्य की ओर इंगित न कर सके। यह प्रगतिशीलता हमें श्री० भुवनेश्वरप्रसाद के एकांकी नाटक के संग्रह 'कारवाँ' में परिलक्षित होती है। 'कारवाँ' के लेखक पर बर्नार्डशॉ का भरपूर प्रभाव पड़ा दीखता है। प्रो० रामकुमार वर्मा ने तो इस दिशा में स्पृहणीय सफलता प्राप्त की है। 'पृथ्वीराज की आँखें', 'बादल की मृत्यु', 'चम्पक', 'नहीं का रहस्य', 'एक्ट्रैस', तथा 'उषा' आदि आपकी एकांकी रचनाएँ हैं, जिनमें हम 'उषा' को सब में सफल मानते हैं। आपके अतिरिक्त श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' श्री जैनेन्द्र, श्री 'अश्क', श्री उदय शंकर भट्ट, श्री नरेन्द्र शर्मा, 'श्री अज्ञेय', श्री गोविंददास सेठ श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी, श्री भगवतीचरण वर्मा, प्रो० डी०, एम० बोरगांवकर, श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, डा०'सत्येन्द्र' श्री गिरिजाकुमार माथुर आदि कई सफल एकांकी नाटककार हैं जिनके पर्य्यवेक्षण से इस दिशा में हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य की आशा है। इन पंक्तियों के अकिंचन लेखक से भी इस दिशा में जब-तब कुछ बन पड़ा है, जो पत्रिकाओं-द्वारा प्रकाश में आता रहा है।

मध्यम-व्यायोग

(महाकवि भास)

परिचय

'मध्यम-व्यायोग' संस्कृत के प्रसिद्ध एवं उद्भट नाटककार महाकवि भास की सफल एवं यशदायिनी कृति है। सन् १६१२ से पूर्व महाकवि भास का नाम-मात्र ज्ञात था। त्रावणकोरस्थ महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री की सफल खोज के परिणाम-स्वरूप महाकवि भास के १३ नाटक उपलब्ध हुए। तब से आज-पर्यन्त भास का अध्ययन और अवलोकन विद्वानों के लिए गौरव की बात हो गई है। प्रो० वामनगोपाल ऊध्वरेषे जैसे विद्वान उक्त महाकवि की कीर्त्ति-कौमुदी को विकीर्ण करने में सतत प्रयत्नशील हैं। पं० गणपति शास्त्री के मतानुसार महाकवि भास का समय ईसा से चौथी शताब्दि पूर्व तथा कालिदास से पहले ठहरता है। आपकी कृतियों के अवलोकन से यह बात प्रमाणित होती है कि वे उच्च-कोटि के नाटककार थे। उनके नाटक अभिनय-योग्य हैं। वाग्देवी की कृपा से सरसता एवं प्राञ्जलता उनकी मुख्य विशेषता बन गई है। भारत में एकांकी नाटकों का जिक्र चलते समय महाकवि भास का नाम अग्र-गण्य है। यही कारण है कि यहाँ उनका एक नाटक 'मध्यम-व्यायोग' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

कथानक

'मध्यम-व्यायोग' में पाण्डवों में मध्यम अर्थात भीम को हिडिम्बा से उत्पन्न उनका पुत्र घटोत्कच किस प्रकार भोज्यरूप में पकड़ कर अपनी माँ के पास ले गया और यों 'देवी हिडिम्बा' से वियुक्त भीम किस प्रकार उससे पुनर्वार मिल सके, इस कथा का रोचक एवं नाटकीय ढंग से वर्णन है। आरम्भ में केशवदास ब्राह्मण अपनी स्त्री तथा तीन पुत्रों सहित प्रवेश करता है, उसके पीछे लगा है घटोत्कच, जो उनमें से एक को अपनी माँ के उदरस्थ करने को ले जाना चाहता है। कौन जाय इस विषय पर विवाद चलता है और निश्चय होता है कि केशवदास का मध्यम अर्थात् बीच का पुत्र ही हिडम्बा की जठराग्नि का शलभ हो। घटोत्कच के साथ जाने से पूर्व वह उसकी आज्ञा प्राप्त कर तालाब पर पानी पीने गया, जहाँ उसे देर लग गई। घटोत्कच उसे मध्यम कह-कह कर पुकार ही रहा था कि अपना नाम पुकारा जाते सुनकर भीमसेन आ उपस्थित हुए। ब्राह्मण के पुत्र को अभय देकर तथा आशीर्वाद प्राप्त कर भीमसेन घटोत्कच के साथ गये और यों उनका देवी हिडिम्बा से पुनर्वार साक्षात्कार हुआ।

मुख्य पात्र

केशवदास—एक वृद्ध ब्राह्मण।

केशवदास की स्त्री।

केशवदास के तीन पुत्र

घटोत्कच—हिडिम्बा और भीम का पुत्र

महावीर भीम—पाण्डवों में मध्यम

हिडिम्बा—घटोत्कच की माता तथा भीमसेन की पत्नी

नाटक

(नान्दी के पश्चात् सूत्रधार आता है)

विष्णु के चरणों की स्तुति

सूत्रधार—असुर स्त्रियों के हृदयों को भयदायक, नीले कमल के सदृश स्वच्छ तथा तलवार के समान नीला ऐसा श्रीहरि का चरण तुम्हारी रक्षा करे। तीनों जगत् में रत्न के समान श्रेष्ठ श्रीहरि का ऊपर उठा हुआ चरण आकाश रूप सागर में वैदूर्य मणि के समान चमकने लगा, वही श्रीहरि का चरण तुम्हारी रक्षा करे। नीलमणि

अब मैं इस प्रकार सज्जनों को सूचित करना चाहता हूँ.... ऐं! यह क्या? सूचित करने में मैं लगा हुआ था कि शब्द-सदृश यह कुछ सुनाई देता है। अच्छा देखता हूँ।

(नेपथ्य में) हे पिताजी, यह कौन है?

सूत्रधार—अच्छा! समझ गया। इसके 'भोः' शब्द के उच्चारण से ही यह ब्राह्मण है यह ज्ञात हो गया। निस्सन्देह किसी निडर पापी हृदय-द्वारा यह पीड़ित है।

(नेपथ्य में) हे पिताजी, यह कौन है?

सूत्रधार—ठीक, समझ गया। यह तो मध्यम पाण्डव का पुत्र हिडिम्बारूप अरणी*से पैदा हुआ राक्षसरूप अग्नि है।

*अरणि = अग्नि पैदा करने वाली लकड़ी। शमी, पीपल आदि लकड़ी के घिसने से अग्नि पैदा होती है।

कभी भी बैर न करनेवाले ब्राह्मणजन को पीड़ा देता है। अरे! पत्नी तथा पुत्र-परिवार सहित यह ब्राह्मण का वृत्तान्त अत्यन्त दुःख-दायक है!

इस वृद्ध ब्राह्मण के साथ इसके थके हुए तरुण पुत्र तथा पत्नी हैं। राक्षस इसके पीछे लगा है। तभी तो व्याघ्र द्वारा पीछा किये जाने से भीत, बछड़े और गाय से युक्त वृषभ के समान यह, व्याकुल हो रहा है।

[प्रस्थान

(प्रस्तावना समाप्त)

=:ꕥ:—

(अपने तीन पुत्र तथा पत्नी के साथ केशवदास प्रवेश करता है, घटोत्कच भी उनके पीछे आता है।

वृद्ध—अरे, यह कौन है? इसके बाल प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान फैले हुए हैं। भौहों के चढ़ाने से इसकी लम्बी आँखें चमकीली और लाल हो रही हैं। इसके गले में यज्ञोपवीत होने से यह बिजली-सहित मेघ के समान शोभित है। इस प्रकार युग का अन्त करने में प्रवृत्त श्रीशङ्करजी की प्रतिमा के समान यह दिखाई दे रहा है।

पहला पुत्र—हे पिताजी यह कौन है? इसकी आँखें नक्षत्रों के समान हैं, इसका वक्षस्थल पुष्ट और विस्तीर्ण है, इसके बाल

सोने के रङ्ग के समान पीले हैं; अंधकार की राशि के समान इसका वर्ण है, श्वेत और आगे निकले हुए इसके दाँत हैं। जिसमें चन्द्रमा की रेखा छिपी हुई हो ऐसे पानी से भरे हुए मेघ के समान यह दिखाई देता है।

दूसरा—यह कौन है भाई ? इसकी दाढ़ें हाथी के बच्चे के दातों के समान हैं; हल जैसी आकृति की इसकी नाक है; इसकी भुजाएँ श्रेष्ठ हाथी की सूँड के समान हैं, नीले मेघ के समान इसका वर्ण है; आहुति से प्रदीप्त अग्नि के समान यह उज्ज्वल है और यह ऐसा भयङ्कर है मानो त्रिपुरासुर के नाश करने वाले शङ्कर जी का क्रोध ही मूर्तिमान आ उपस्थित हुआ हो।

तीसरा—हे पिताजी, यह कौन है जो हमें पीड़ा दे रहा है ? जैसे पर्वत-श्रेष्ठों के लिए वज्रपात, पक्षि-कुल के लिए बाज, हरिण-समूह के लिये सिंह होता है वैसे ही शरीर-धारी मनुष्य के लिए यह साक्षात मृत्यु ही है।

ब्राह्मणी—आर्य, यह कौन हमें सन्ताप देता है ?

घटोत्कच—हे ब्राह्मण, ठहरो, ठहरो ! गरुड़राज के अग्र-पक्ष के पवन से उद्दीप्त क्रोधाग्नि से अत्यन्त तीव्र गति होने पर भी अपने कुटम्बियों के साथ जिस प्रकार एक भुजङ्ग पीड़ित होता है उसी प्रकार मेरे भय से तुम्हारा धैर्य गलित हो गया है। अपनी पत्नी तथा पुत्रों का रक्षण करने की अब तुम में शक्ति नहीं, इसलिए घबराते हुए अब तुम जा क्यों रहे हो ? हे ब्राह्मण महाराज, न जाइए. न जाइए !

वृद्ध—हे ब्राह्मणि ! मत डरो । हे पुत्रो, न डरो, न डरो इसका कथन विचार-पूर्ण है ।

घटोत्कच—अरे रे ! बड़े परिताप की बात है । सब जगह सर्वकाल में ब्राह्मण इस दुनिया में पूजनीय हैं यह मुझे ज्ञात है; किन्तु अपनी माता की आज्ञा से निःसंशय होकर यह अकार्य मुझे करना पड़ेगा ।

वृद्ध—हे ब्राह्मणि ! भगवान् जलक्लिन्न नाम के मुनि ने कहा था कि यह वन राक्षसों से भरा हुआ है, इसलिए इसमें अत्यन्त सावधानीं से चलना चाहिए । क्या यह तुम्हें याद नहीं ? वही डर आ उपस्थित हुआ !

ब्राह्मणी—इस समय आपका मुख उदासीन-सा किस कारण दिखाई देता है ?

वृद्ध—मैं अभागा हूँ, क्या करूं ?

ब्राह्मणी—किसी को चिल्लाकर बुलावें ?

पहला पुत्र—माताजी, हम किसको चिल्लाकर बुलावें ? यह वन गहरे अन्धकार से परिपूर्ण है, बड़े-बड़े पर्वतों ने इसमें जाने-आने से मार्गों का अवरोध कर दिया है । पशु-पक्षियों से परिपूर्ण यह वन मनस्वियों के योग्य है ।

वृद्ध—हे ब्राह्मणि ! डरो मत, डरो मत ! यह वन योगियों के निवासके योग्य है, यह सुनकर मेरा डर जैसे कि भाग गया

पाण्डवों का आश्रम यहीं कहीं आसपास में ही होगा, ऐसा मेरा अनुमान है। पाण्डव युद्ध के प्रेमी, शरण आये हुओं की रक्षा करने वाले, गरीबों के पक्षपाती तथा साहसी हैं। जिनकी आकृति एवं व्यवहार ऐसे ।दुस्साहस-पूर्ण हैं उन लोगों को उचित दण्ड देने में भी वे समर्थ हैं।

पहला—हे पिताजी, यहाँ पाण्डव नहीं हैं ऐसा मेरा अनुमान है।

वृद्ध—पुत्र, तुम कैसे जानते हो ?

पहला—उसी आश्रम से आये हुए किसी ब्राह्मण से मैंने सुना कि शतकुम्भ नाम के यज्ञ को देखने के लिए महर्षि धौम्य के आश्रम को वे गये हैं।

वृद्ध—हाय ! हम मर गये !!

पहला—पिताजी, सब ही पाण्डव वहाँ नहीं गये ; अपितु आश्रम की रक्षा करने के हेतु यहाँ मध्यम पाण्डव, भीमसेन, को छोड़ गये हैं।

वृद्ध—यदि ऐसा है तो सब पाण्डव पास ही हैं।

पहला—और भीमसेन भी इस समय व्यायाम करने के लिए दूर-देश में हैं ऐसा सुना है।

वृद्ध—हाय, हम फिर निराश हैं ! अस्तु, पुत्र प्रथम इसी की प्रार्थना कर देखें।

पहला—प्रार्थना करने का परिश्रम करना व्यर्थ है।

वृद्ध—हे पुत्र, प्रार्थना से तो उदासीनता जाती रहती है।

पहला—अस्तु, देख लेंगे। हे भले आदमी, क्या हमारा छुटकारा होगा ?

घटोत्कच—हाँ, छुटकारा तो हो सकता है, पर किसी शर्त पर।

वृद्ध—शर्त कौनसी ?

घटोत्कच—मेरी परम पूज्या माताजी हैं। उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि 'हे पुत्र, मेरे उपवास की पारणा के लिए इस वन में से किसी मनुष्य को ढूँढ़ कर लेआ।' यदि अपने दोनों पुत्रों और सदाचारिणी पत्नी-सहित तुम मेरे भय से मुक्त होना चाहते हो तो योग्यायोग्य का विचार कर एक पुत्र मुझे दे दो।

वृद्ध—अरे नीच राक्षस, क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ? मैं ब्राह्मण हूँ, वेदपाठी हूँ; वृद्ध हूँ; अच्छे, शीलवान और गुणी पुत्रों को राक्षस के हाथ में समर्पण करने से मुझे शान्ति कैसे मिलेगी ?

घटोत्कच—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, यों माँगने पर भी यदि एक पुत्र का त्याग न करोगे तो क्षण में ही सारे कुटुम्ब-सहित तुम्हारा नाश हो जावेगा।

वृद्ध—हे ब्राह्मणि, मेरा निश्चय यह है। मेरे शरीर को जो कुछ करना था कर लिया; वृद्धावस्था के कारण अब यह जर्जर

हो गया है। अपने पुत्र के लिए विधि-पूर्वक पवित्र किये हुए शरीर की राक्षस-रूप अग्नि में मैं आहुति दे-दूँगा।

ब्राह्मणी—महाराज, ऐसा न करें। मैं पातिव्रत धर्म पर चलने वाली हूँ, अतः अपना शरीर अर्पण कर आपकी तथा अपने कुल की रक्षा करना चाहती हूँ।

घटोत्कच—पूज्य माताजी स्त्रीजन को पसन्द नहीं करतीं, इसलिए तुम पीछे हटो।

वृद्ध - मैं आपके साथ चलूँगा।

घटोत्कच—हटो तुम तो बूढ़े हो, हट जाओ।

पहला—हे पिताजी, मैं कुछ बोलना चाहता हूँ।

वृद्ध—कहो पुत्र।

पहला—अपने प्राण देकर अपने गुरुजनों के प्राणों की रक्षा करना चाहता हुँ। इसलिए इस कुल की रक्षा के लिए आप मेरा त्याग कीजिए।

दूसरा—भाई, ऐसा न कहो। ज्येष्ठ पुत्र इस दुनिया में तथा अपने-अपने कुल में श्रेष्ठ होता है आपके ज्येष्ठ भ्राता होने के कारण मैं ही स्वयं जाऊँगा।

तीसरा—भाई, आप दोनों ऐसा न कहें। ब्रह्मवादी लोगों का कहना है कि ज्येष्ठ भाई पिता के समान होता है, इसलिए अपने से बड़ों के प्राणों का रक्षण करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

पहला—बच्चे, यों मत कहो। पिता जब संकट में आवे तब ज्येष्ठ पुत्र को उसका रक्षण करना चाहिए; इसलिए गुरुजनों की प्राणरक्षा के हेतु मैं ही जाऊँगा।

वृद्ध—ज्येष्ठ सब से प्यारा होता है। उसका मैं त्याग नहीं कर सकता।

ब्राह्मणी—जिस प्रकार ज्येष्ठ पुत्र आपको प्यारा है, उसी प्रकार कनिष्ठ पुत्र मुझे प्यारा है।

दूसरा—माता-पिता को जो अप्रिय है वह किसका प्यारा होगा?

घटोत्कच—तू मेरा प्यारा है। जल्दी आजा।

दूसरा—अपने प्राणों से गुरुजनों के प्राणों की रक्षा होगी इसलिए मैं धन्य हूँ। उच्च बान्धव-प्रेम की अपेक्षा मृत्यु से स्नेह करना दुर्लभ है।

घटोत्कच—इस ब्राह्मण-बालक का अपने कुटुम्बियों पर कैसा प्रगाढ़ प्रेम है।

दूसरा—हे पिताजी, मैं प्रणाम करता हूँ।

वृद्ध—हे पुत्र, आओ, आओ। हे गुरुजनों के प्रेमी, तुमने अपने प्राणों के मूल्य से गुरुजनों के प्राण मोल ले लिये हैं, अतएव पापी जनों को दुर्लभ ब्रह्मलोक तुम्हें प्राप्त हो। (आलिङ्गन करता है)

दूसरा—अनुगृहीत हूँ। माताजी, मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्राह्मणी—बच्चे, चिरंजीव हो।

दूसरा—धन्य हूँ। भाई साहब, प्रणाम करता हूँ।

पहला—आओ, बच्चे आओ। मुझे प्रगाढ़ आलिङ्गन करो। तुम शुभ गुणों से सुशोभित हो, तुम्हारी कीर्ति का प्रसार सम्पूर्ण पृथ्वी पर हो जावेगा।

दूसरा—मैं अनुगृहीत हूँ।

तीसरा—भाई, मैं प्रणाम करता हूँ।

दूसरा—कल्याण हो!

तीसरा—बड़ा अनुग्रह किया।

दूसरा—हे भले आदमी, मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

घटोत्कच—बोलो, जल्दी बोलो।

दूसरा—इस जंगल में तालाब-सा दिखाई दे रहा है। मैं परलोक जाने वाला हूँ, इसलिए वहाँ जाकर अपनी तृषा-पूर्ति कर लूँ।

घटोत्कच—निश्चित साहस के आदमी, जाओ। माताजी के भोजन का समय व्यतीत हो रहा है, इसलिए जल्दी आना-

दूसरा—पिताजी मैं जाता हूँ।

[प्रस्थान

वृद्ध—हाय-हाय! हम लुट गये! हमें लूट लिया!! तीन शिखरों का मेरा कुल-रूप पर्वत अत्यन्त मनोहर था। उसके मध्यम शिखर के भङ्ग होने से अब वह मेरे मन को अत्यन्त सन्तप्त कर रहा है। हाय पुत्र! क्या तुम चल दिये? तुम्हारा

रूप तथा कान्ति योग्य ही है। तुम्हारी बुद्धि नियमों के आचरणों में तथा वेदों का अभ्यास करने में लगी हुई है। अतः फलों से सुशोभित वृक्ष, श्रेष्ठ हाथी के दाँतों से जैसे छिन्न-भिन्न हो जाता है वैसे ही तुम भी अपना नाश कर रहे हो।

घटोत्कच—यह ब्राह्मण-बालक देरी कर रहा है। माताजी के भोजन का समय टल रहा है। अब क्या करना चाहिए ? अस्तु, ठीक। समझ गया। हे ब्राह्मण, अपने पुत्र को बुलाओ।

वृद्ध—हाँ, सच पूछा जाय तो तुम्हारा बोलना तो राक्षस से भी अधिक है।

घटोत्कच—क्यों क्रुद्ध होते हो ? क्षमा कीजिए; मुझे क्षमा कीजिए। यह तो मेरे स्वभाव का ही दोष है। अच्छा आपके पुत्र का क्या नाम है ?

वृद्ध—यह भी मैं नहीं सुन सकता।

घटोत्कच—हाँ जी, यह उचित ही है! हे ब्राह्मण के लड़के, तुम्हारे भाई का क्या नाम है ?

पहला—बेचारे का नाम मध्यम है।

घटोत्कच—क्या मध्यम नाम है ? यह नाम तो उसके योग्य ही है। मैं स्वयं उसे बुलाता हूँ! अरे मध्यम! ऐ मध्यम!! जल्दी आओ!!!

(भीमसेन का आगमन)

भीमसेन – अरे यह किसकी आवाज़ है ? इस जङ्गल में सैकड़ों पक्षियों का शब्द हो रहा है; वृक्षों से भरा हुआ यह वन संकटमय है। इससे आया हुआ यह स्वर मुझे अतीव कष्ट दे रहा है। यह स्वर अर्जुन के स्वर के समान प्रतीत होता है।

घटोत्कच—सचमुच ब्राह्मण-कुमार देरी लगा रहा है। माताजी के भोजन का समय टल रहा है। अब मैं क्या करूँ ? ठीक, समझ गया। जोर से पुकारता हूँ। अरे मध्यम ! ओ मध्यम !! जल्दी आओ !!!

भीम०—अरे इस वन में मेरे व्यायाम में विघ्न पैदा करने वाला 'मध्यम, मध्यम' कह कर मुझे यह कौन पुकारता है ? अस्तु देख तो लूँ। (घूम के देख कर) ओ हो, यह पुरुष तो देखने लायक है। इसका मुख और दाढ़ें सिंह के समान हैं; मदिरा के सदृश इसकी आँखें हैं और रसीला तथा गम्भीर स्वर है; इसकी भौंहें पीली हैं और बाज के सदृश नाक है; गजराज-सी ठुड्डी है और इसके बाल लम्बे और बिखरे हुए हैं। इसकी छाती चौड़ी है और वज्र के समान दृढ़ कटि है। इसकी भुजाएँ लम्बी और पुष्ट हैं, और गज तथा वृषभ के तुल्य इसकी गति है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह किसी राक्षसी से उत्पन्न, विपुल बलवाला किसी लोकवीर का पुत्र हो।

घटोत्कच—ब्राह्मण का बालक देर कर रहा है। माताजी के भोजन का समय व्यतीत होता है। अब मैं क्या करूँ ? ठीक, उसे और ज़ोर से पुकारूँ। ऐ मध्यम ! जल्दी आओ !!

भीम० -जी हाँ, यह मैं आ पहुँचा ।

घटोत्कच—यह तो सचमुच ब्राह्मण का बालक नहीं है। ओ हो, यह तो बड़ा सुन्दर पुरुष है। सिंह-सदृश आकार, सुवर्ण-ताल के समान लम्बे और पुष्ट भुजदण्ड, पतली कमर और गरुड़ के पंख जैसी मृदु इसकी पीठ है, मानो कि प्रफुल्ल कमल के समान नेत्र वाले स्वयं विष्णु भगवान् ही हों। आई के समान यहाँ आकर जैसे कि मेरे नेत्रों को आकर्षित ही कर रहा हो। अरे मध्यम, तुझे मैं पुकारता हूँ !

भीम०—इसीलिए मैं यहाँ आ पहुँचा ।

घटोत्कच—क्या आप का नाम भी मध्यम है ?

भीम०—हाँ, इसके अतिरिक्त नहीं। हे भद्र पुरुष, अवध्यों में मैं मध्यम हूँ, घमण्डी वीरों में मैं मध्यम, इस पृथ्वी पर भी मध्यम, और अपने भाइयों में भी मैं मध्यम हूँ।

घटोत्कच—होगा ।

भीमसेन—और भी, पञ्च* महाभूतों में मध्यम, राजाओं में मध्यम, जन्म से मध्यम और दुनिया में भी मध्यम हूँ।

वृद्ध–मध्यम है, ऐसा कहने से यह निश्चित मध्यम पाण्डव

---

* पृथ्वी, अप, वायु तेज, तथा आकाश ये पंच महाभूत हैं। भीमसेन वायु का पुत्र है इसलिए वह भी महाभूतों में मध्यम हुआ।

भीमसेन है। मृत्यु के दर्प से उठा हुआ हमें छुड़ाने के लिए ही जैसे कि यहाँ आया हो।

(ब्राह्मण का पुत्र मध्यम आता है)

इस सरोवर में आचमन करके परलोक में जो दुर्लभ है ऐसा कमल के पत्तो के सदृश शुद्ध जल मैने स्वयं अपने को ही दे लिया। (पास जाकर) हे पुरुष, मैं आया हूँ।

घटोत्कच—क्या तुम अब सचमुच आगये हो ? मध्यम, मध्यम ! इधर आओ, इधर।

वृद्ध— (भीम के पास जाकर) अरे भाई मध्यम, ब्राह्मण-कुल की रक्षा करो।

भीमसेन—न डरो, न डरो ! मैं मध्यम आपको प्रणाम करता हूँ।

वृद्ध—वायु-सदृश दीर्घायु हो।

भीमसेन—मैं अनुगृहीत हुआ; आपके डर का कारण ?

वृद्ध—सुनिए। कुरु देश के राजा युधिष्ठिर ने कुरुजांगल नामक देश बसाया है। उस देश में के यूप नाम के गाँव का मैं रहने वाला, माठर मेरा गोत्र, और कल्प नाम की यजुर्वेदीय शाखा का अध्ययन करने वाला केशवदास नाम का ब्राह्मण हूँ। मेरे गाँव से उत्तर की ओर उद्यामक गाँव है वहाँ का रहने वाला कौशिक गोत्री यज्ञबन्धु नाम का मेरा मामा है। उसके

पुत्र के यज्ञोपवीत समारम्भ में अपने कुटुम्बियों-सहित मैं जाने के लिए निकला हूँ।

भीमसेन—तुम्हारा मार्ग निर्विघ्न हो। आगे ?

वृद्ध—फिर यह राक्षस, जिसका शरीर जल से भरे हुए मेघ के समान है, जिसकी आँखें कमल-पत्र के समान विशाल हैं, सिंह-सदृश जिसकी चाल है, जिसके दाँत भयङ्कर तथा बाहर निकले हुए हैं, यह राक्षस इस दुनिया में आप—जैसों के सम्मुख निडर होकर पुत्र-परिवारसहित मुझे मारने की इच्छा से आ रहा है।

भीमसेन—अच्छा यह बात है। इसने ब्राह्मण के मार्ग में बाधा उपस्थित की। अस्तु, प्रथम मैं इसे पकड़ूँगा। ऐ पुरुष ! ठहरो, ठहरो।

घटोत्कच—यह लो, मैं ठहर गया।

भीमसेन—ब्राह्मण को किस लिए सता रहे हो ? पुत्र-रूप नक्षत्रों से घिरे हुए, पत्नीरूपी प्रभा से सुशोभित, वृद्ध ब्राह्मणरूप पूर्ण चन्द्रमा के प्रति तुम राहु के समान आये हो।

घटोत्कच—हाँ ठीक। राहु ही समझो।

भीमसेन—आः, यह दुनिया के व्यवहारों से निवृत्त हो चुका है। इसकी पत्नी और पुत्र साथ हैं। सब अपराध करने से भी यह बध करने योग्य नहीं; ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण को छोड़ दो।

घटोत्कच—नहीं छूटेगा।

भीमसेन—(स्वगत) अरे यह किसका पुत्र है ? मेरे सब भाइयों के गुणों को चुराने वाला यह कौन है ? इसके बल-प्रताप को देख कर मुझे अभिमन्यु की याद आती है। (प्रकट) हे पुरुष, इसे छोड़ दो।

घटोत्कच—नहीं छोड़ता। 'इसे छोड़ दो' ऐसा मेरे पिता जी भी पूर्ण निश्चय-पूर्वक मुझ से कह दें तो भी अपनी माता जी की आज्ञा से मैंने इसे पकड़ा है, इसलिए मैं इसे नही छोड़ सकता।

भीमसेन—(स्वगत) क्या 'माताजी की आज्ञा' ऐसा कहा ? अरे यह तो वेचारा गुरुजनों की सेवा करने वाला है। मनुष्यों के लिए अपनी-अपनी माता, सचमुच सब देवताओं की देवता है। माता की आज्ञा मान्य करने से ही हम इस अवस्था को प्राप्त हुए। (प्रकट) हे पुरुष, कुछ पूछना चाहता हूँ।

घटोत्कच—बोलो जल्दी बोलो।

भीमसेन—आपकी माता का क्या नाम है ?

घटोत्कच—हिडिम्बा नाम की राक्षसी। पूर्ण चन्द्रमा से जैसे आकाश सनाथ होता है उसी प्रकार वह भाग्यवती, कौरव-कुलदीपक महामना पाण्डव भीम के योग से नाथवती हुई है।

भीमसेन—(स्वगत) अच्छा, तो यह बात है, यह हिडिम्बा का पुत्र है ; तो इसका गर्व करना भी योग्य है। इसका रूप, शक्ति और बल अपने पिता के सदृश है। किन्तु प्रजाजनों के प्रति इसका मन निष्करुण क्यों हुआ ? (प्रकट) हे पुरुष, इसे छोड़ दो।

घटोत्कच—नहीं छोड़ा जायगा।

भीमसेन—हे ब्राह्मण महाराज, अपने पुत्र को लेलो। हम इसके साथ जावेंगे।

दूसरा पुत्र--न, आप ऐसा न कहें ! गुरुजनों के प्राणों के हेतु मैंने अपने प्राणों का पहले ही त्याग कर दिया है। आप रूप-गुणों से युक्त युवा पुरुष हैं; इसलिए आप इस पृथ्वी पर ही रहें।

भीमसेन--पूज्यवर, आप ऐसा न कहें। मैं क्षत्रिय कुल में पैदा हुआ हूँ। ब्राह्मण अत्यन्त पूज्य होते हैं, इसलिए अपने शरीर से ब्राह्मण की रक्षा करना चाहता हूँ।

घटोत्कच--अच्छा, यह क्षत्रिय है। तब ही इसे घमंड है। अस्तु, इसी को मार कर ले जाऊँगा। अच्छा, इसे किसने रोका ?

भीमसेन—मैंने।

घटोत्कच—क्या तूने ?

भीमसेन—हाँ।

घटोत्कच—अच्छा तो फिर तू ही आ।

भीमसेन—ठीक, अपने से अधिक पराक्रमी तथा बलवान के साथ मैं नहीं जाता हूँ। यदि तुझ में शक्ति हो तो बल-पूर्वक मुझे ले जा।

घटोत्कच—क्या तुम मुझे पहिचानते हो?

भीमसेन—अपने पुत्र-जैसा मैं तुम्हें पहिचानता हूँ।

घटोत्कच—कैसे, भला मैं तेरा पुत्र कैसे?

भीमसेन—क्या गुस्सा होते हो? क्षमा करो, मुझे क्षमा करो! सब प्रजा क्षत्रियों के लिए पुत्र के समान होती है। इसीलिए मैंने ऐसा कहा।

घटोत्कच—यानी डरपोकों का शस्त्र ले लिया!

भीमसेन—सत्य की शपथ लेकर मैं कहता हूँ कि भय किसे कहते हैं यह मैं नहीं जानता। आपसे उसे जानने की मेरी इच्छा है। भले आदमी, इसका रूप कैसा है, कहो। इसके गुण-दोषों का विचार कर आगे क्या करना चाहिए इसका मैं विचार करूँगा।

घटोत्कच—यह लो; भय क्या होता है मैं तुम्हें सिखाता हूँ; आयुध लो।

भीमसेन—क्या आयुध लूँ ? यह आयुध ले लिया।

घटोत्कच—सो कैसे ?

भीमसेन—सोने के खम्भे के समान, शत्रुओं को बाँधने वाला यह मेरा दाहिना भुजदण्ड योग्य शस्त्रके समान ही है।

घटोत्कच—यह तो मेरे पिता भीम के योग्य वचन हैं।

भीमसेन—अच्छा, यह भीमसेन कौन है ? विश्वकर्ता, शिव, कृष्ण, इन्द्र, कार्तिकेय तथा यम इनमें से, हे भले आदमी, किसके सदृश तेरा पिता है, कहो।

घटोत्कच—सभी के सदृश।

भीमसेन—धिक्कार ! यह झूठ है।

घटोत्कच—क्या ? झूठ है ऐसा कहा ? मेरे पिता की निन्दा कर रहा है ! अच्छा, इस बड़े वृक्ष को उखाड़ कर मारता हूँ। (उखाड़ कर मारता है) क्या इससे भी नहीं मारा जा सकता ! अब क्या करूँ ? अस्तु, समझ गया। इस पहाड़ की चोटी को उखाड़ कर मारता हूँ। मेरी फेंकी हुई पहाड़ की चोटी प्राण लेकर ही आवेगी।

भीमसेन—यदि जंगली हाथी क्रुद्ध भी हो जाय तो भी जंगल में व्याघ्र का पराजय नहीं कर सकता।

घटोत्कच—(प्रहार करके) क्या इससे भी नहीं मारा जा सकता ? अब क्या करूँ ? ठीक समझ गया। मैं भीमसेन का पुत्र और वायु का नाती हूँ। अब सँभल कर तैयार हो जाओ। बाहु-युद्ध में मेरे बराबर कोई नहीं है।

(दोनों बाहु-युद्ध करते हैं)

घटोत्कच—(भीमसेन को बाँधकर) दृढ पाश-बन्धन से जकड़े हुए हाथी के समान मेरी भुजा में आबद्ध होकर तू अब मेरे बाहुबल का उल्लंघन कर कहाँ जावेगा।

भीमसेन—(स्वगत) क्या इसने मुझे पकड़ लिया? हे सुयोधन तेरा शत्रु-पक्ष बढ़ता है। अपनी रक्षा करने को तत्पर होजा। (प्रकट) अरे पुरुष, सावधान हो जा।

घटोत्कच—मैं सावधान हूँ।

भीमसेन—(बाहुबन्धनको तोड़कर) हे वीर, तेरी शक्ति का ज्ञान मुझे हो गया, इसलिए अपने बल का घमण्ड त्याग दे। बाहु-युद्ध में मुझे कष्ट नहीं होती।

घटोत्कच—क्या इससे भी नहीं मारा जा सकता? अब क्या करूँ? ठीक, समझ गया। माताजी के प्रसाद से मिला हुआ 'मायापाश' मेरे पास है, उससे बाँधकर इसे ले जाऊँगा। अब जल कहाँ से लाऊँ? हे पर्वत, अब जल दीजिए। ओ हो, जल टपक रहा है। (आचमन कर मन्त्र जपता है) हे पुरुष, मायापाश से बँधा हुआ तू अब विवश होने से बच नहीं सकेगा। यज्ञ में शोभा देने वाले इन्द्रध्वज के समान रस्सियों से बँधा हुआ तू शोभा दे रहा है।

(ऐसा कहकर माया से बाँधता है)

भीमसेन—क्या मैं मायापाश से बँध गया ? अब मैं क्या करूँ ? शङ्करजी की कृपा से मिले हुए मायापाश के छुड़ाने का मन्त्र मुझे ज्ञात है। उसका जप करता हूँ। किन्तु जल कहाँ से पाऊँ ? ठीक, हे ब्राह्मण कुमार, कमण्डल में से जल लाओ।

वृद्ध—यह लो जल।

(भीमसेन आचमन कर मन्त्र जपकर मायापाश को छुड़ाता है)

घटोत्कच—अरे पाश तो गिर पड़े ! अब क्या करूँ ? ठीक, हे पुरुष, पहले की प्रतिज्ञा को याद करो।

भीमसेन—क्या प्रतिज्ञा याद करने को कहा ? यह लो प्रतिज्ञा याद करता हूँ। आगे चलो।

[दोनों जाते हैं

वृद्ध—बच्चो, क्या करें ? यह भीमसेन जाता है ! इस राक्षस का रूप तेजस्वी और भयङ्कर है, उग्र बाहुबल तथा वीर्य से यह युक्त है। एक मोटा बैल वर्षा की धाराओं को लीला से फेंक कर जैसे जाता है वैसे ही यह भी चला जा रहा है।

(वे सब भी उन दोनों के पीछे जाते हैं)

घटोत्कच—यहाँ ठहरो। अपनी माता को तुम्हारे आने की खबर पहुँचाता हूँ।

भीमसेन—अच्छा, जाओ।

घटोत्कच—(पास जाकर) माताजी, मैं घटोत्कच आपको

प्रणाम करता हूँ। बहुत समय से जिसकी आप इच्छा करती थीं वह मनुष्य आप के भोजन के लिए मैं लाया हूँ।

(हिडिम्बा आती है)

हिडिम्बा—बच्चे, चिरञ्जीव हो! किस प्रकार का आदमी लाया है?

घटोत्कच—पूज्य माताजी, नाम-मात्र से मनुष्य है, पराक्रम से नहीं?

हिडिम्बा—क्या ब्राह्मण है?

घटोत्कच—ब्राह्मण नहीं।

हिडिम्बा—क्या बूढ़ा है?

घटोत्कच—बूढा भी नहीं।

हिडिम्बा—फिर क्या बालक है?

घटोत्कच—बालक भीं नही।

हिडिम्बा—अच्छा, तो मैं जरा देख तो लूँ।

(दोनों घूमते हैं)

हिडिम्बा—क्या इस मनुष्य को लाया है रे!

घटोत्कच—पूज्य माताजी, यह कौन है?

हिडिम्बा—अरे पागल, यह तो देवता हैं।

घटोत्कच—ओह! किसका देवता?

हिडिम्बा—तेरे और मेरे, दोनों ही के।

घटोत्कच—क्या प्रत्यय?

हिडिम्बा—अच्छा प्रत्यय ही ले। महाराज की जय हो।

भीमसेन—(देख कर) अरे यह कौन ? यह तो देवी हिडिम्बा है! देवी, हमारा राज्य भ्रष्ट हो गया था, घने जङ्गल में भटक रहे थे, तब तुम्हें दया आई और तुमने हमारी पीड़ा का निवारण किया। हिडिम्बे! यह क्या ?

हिडिम्बा—(कान में) महाराज, इस प्रकार!

भीमसेन—जाति से राक्षसी है, आचार से नहीं।

हिडिम्बा—ऐ पागल! पिताजी को प्रणाम कर।

घटोत्कच—हे पिताजी, धृतराष्ट्र के पुत्र-रूप वनको दावाग्नि रूप मैं घटोत्कच हूँ। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। बालक के बचपन को क्षमा कीजिए।

भीमसेन—आओ, पुत्र आओ। जो मर्यादातिक्रमण तुमने किया वह मुझे प्यारा ही है। (आलिंगन करके) धृतराष्ट्र के पुत्ररूप वन को दावाग्नि रूप, तेरे लिए तेरे पिताओं के हृदय उत्कण्ठित हैं। पुत्र, तू अतीव बलशाली और पराक्रमी हो।

घटोत्कच—मुझ पर यह भारी अनुग्रह हुआ।

वृद्ध—अच्छा ऐसा है। यह भीमसेन का पुत्र घटोत्कच है।

भीमसेन—हे पुत्र, परमपूज्य केशवदासजीको प्रणाम करो।

घटोत्कच—महाराज, मैं प्रणाम करता हूँ।

वृद्ध—गुण तथा कीर्ति में पिता के समान हो।

घटोत्कच—मैं अनुगृहीत हूँ।

वृद्ध—हे वृकोदर! हमारे वंश की तुमने रक्षा की और अपने कुल का उद्धार कर दिया। अच्छा, अब हम जाते हैं।

भीमसेन—आपके अनुग्रह से यह सब शुभ हो गया। पास ही हमारा आश्रम है, वहाँ विश्राम लेकर जाइए।

वृद्ध—प्राणदान देकर हमारा आतिथ्य सत्कार तो कर ही दिया है। इसलिए अब हम जाते हैं।

भीमसेन—आप अपने परिवार-सहित पधारें, और फिर दर्शन देने की कृपा करें।

वृद्ध—ठीक, बहुत अच्छी बात।

(केशवदास अपने पुत्र और पत्नी सहित जाता है)

भीमसेन—हिडिम्बा, यहाँ तो आओ। बच्चे घटोत्कच, इधर आ जाओ। परमपूज्य केशवदासजी को आश्रम के द्वार तक पहुँचा कर उनका सम्मान करेंगे।

"जैसे नदियों का स्वामी समुद्र, आहुतियों का स्वामी अग्नि, इन्द्रियों का मालिक मन, वैसे उपेन्द्र श्री विष्णु भगवान् हमारे स्वामी हैं।"

[सब जाते हैं

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'

(भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र)

परिचय—

उक्त नाटक हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार कवि, तथा हिन्दीके आधुनिक युग के निर्माता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा प्रणीत है। नाटक का नाम प्रसिद्ध संस्कृत वाक्य के रूप में दिया गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि 'वेदों के नाम पर की गई हिंसा हिंसा नहीं कहलाती।' नाटककारने वेदोंके नाम पर किये जाने वाले अनाचारों की जी खोल कर पोल खोली है और उक्त संस्कृत वाक्य को, जो अनेक व्यक्तियों की दृष्टि में प्रवाद-वाक्य ही बन गया था, निस्सार प्रमाणित किया है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने छोटे से जीवनकाल में अनेक छोटे-बड़े नाटकों की रचना कर अभूतपूर्व यश का अर्जन किया था। उनके छोटे नाटक 'अंक' के स्थान पर 'दृश्य' लिखदेने-मात्र से एकांकी नाटक की कोटि में आ जाते हैं और इस प्रकार उन्हें हिन्दी का सर्व-प्रथम एकांकी नाटककार प्रमाणित करते हैं। सम्भव है, हमारी यह बात उन महानुभावों को मान्य न हो जो अपने को सर्व-प्रथम एकांकी नाटककार मान बैठे हैं। भास का एक नाटक पढ़ लेने के पश्चात् हिन्दी के आधुनिक युग के आद्याचार्य द्वारा प्रणीत इस प्रहसन का अध्ययन अनेक दृष्टियों से अनिवार्य है।

मुख्य पात्र-

राजा	—	एक वेदान्ती
पुरोहित	—	यमराज
मन्त्री	—	चित्रगुप्त
एक बङ्गाली	—	यमदूत
विदूषक		

प्रहसन—

(नान्दी)

दोहा—बहु बकरा बलि हित कटैं, जाके बिना प्रमान।
सो हरि की माया करै, सब जग को कल्यान॥

(सूत्रधार और नटी आते हैं)

सूत्रधार—अहा हा? आज के सन्ध्या की कैसी शोभा है। सब दिशा ऐसी लाल हो रही है, मानो किसी ने बलिदान किया है और पशु के रक्त से पृथ्वी लाल हो गई है।

नटी—कहिए आज भी कोई लीला कीजिएगा?

सूत्रधार—बलिहारी! अच्छी याद दिलाई, हाँ जो लोग मांस- लीला करते हैं उनकी लीला करेंगे।

(नेपथ्य में) अरे शैलूषाधम ! तू मेरी लीला क्या करैगा ? चल भागजा, नहीं तो तुझे भी खा जायँगे ।

(दोनों समय) अरे हमारी बात गृद्धराज ने सुन ली, अब भागना चाहिए नहीं तो बड़ा अनर्थ करेगा ।

[दोनों जाते हैं

इति प्रस्तावना

प्रथम अंक

(स्थान—रक्त से रंगा हुआ राजभवन)

(नेपथ्य में) बढ़े जाइयो ! कोटिन लवा बटेर के नाशक, वेद धर्म प्रकाशक, मंत्रों से शुद्ध करके बकरा खानेवाले, दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ानेवाले, सहित सकल समाज श्रीगृद्धराज महाराजाधिराज !

(गृद्धराज, चोबदार, पुरोहित और मंत्री आते हैं)

राजा—(बैठकर) आज की मछली कैसी स्वादिष्ट बनी

थी ! पुरोहित —सत्य है। मानो अमृत में डुबोई थी और ऐसा कहा भी है—

केचित् वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु ।
केचित् वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु ॥
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षाः ।
जम्बीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे ।

राजा—क्या तुम ब्राह्मण होकर ऐसा कहते हो ? एं तुम साक्षात् ऋषि के वंश में होकर ऐसा कहते हो !

पुरोहित—हाँ हाँ ! हम कहते हैं और वेद, शास्त्र, पुराण, तंत्र सब कहते हैं—"जीवो जीवस्य जीवनम् ।"

राजा—ठीक है. इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

पुरोहित—संदेह होता तो शास्त्र में क्यों लिखा जाता ?

हाँ, बिना देवी अथवा भैरव के समर्पण किये कुछ होता हो तो हो भी।

मंत्री—सो भी क्यों होने लगा ? भागवत में लिखा है—

"लोकेव्यवायामिषमद्यसेवा
नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना ॥"

पुरोहित—सच है और देवी की पूजा नित्य करना इसमें कुछ सन्देह नहीं है, और जब देवी की पूजा भई तो मांस भक्षण आ ही गया। बलि बिना पूजा ही होगी नहीं, और जब

बलि दिया तब उसका प्रसाद अवश्य ही लेना चाहिए । अजी भागवत में बलि देना लिखा है, जो वैष्णवों का परम पुरुषार्थ है।

"धूपोपहारबलिभिस्सर्वकामवरेश्वरीं"

मंत्री—और "पंच पंचनखा भक्ष्याः" यह सब वाक्य बराबर से शास्त्रों में कहते ही आते हैं—

पुरोहित—हाँ-हाँ जी इसमें भी कुछ पूछना है, अजी साक्षात् मनु जी कहते हैं—

"न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने"

और जो मनु जी ने लिखा है कि—

"स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति"

सो वही लिखते हैं –

"अनभ्यर्च्य पितृन देवान्"

इससे जो खाली मांस भक्षण करते हैं उनको दोष है। महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मण गोमांस खा गये, पर पितरों को समर्पित था इससे उन्हें कुछ भी पाप न हुआ।

मंत्री —जो सच पूछो तो दोष कुछ भी नहीं है, चाहे पूजा कर के खाओ, चाहे वैसे खाओ।

पुरोहित—हाँ जी, यह सब एक मिथ्या प्रपञ्च है, खूब मजे

में मांस कचर-कचर के खाना और चैन करना। एक दिन तो आखिर मरना ही है, किस जीवन के वास्ते शरीर को व्यर्थ वैष्णव की तरह क्लेश देना, इससे क्या होता है ?

राजा—तो हम कल बड़ी पूजा करेंगे। एक लाख बकरा और बहुत से पक्षी मँगवा रखना।

चोबदार—जो आज्ञा।

पुरोहित—(उठ करके नाचने लगा) अहा ! हा ! बड़ा आनन्द भया, कल खूब पेट भरेगा।

राग कान्हरा ताल चर्चरी

धन्य वे लोग जे मांस खाते। मच्छ बकरा लवा ससक हरना चिड़ा भेड़ इत्यादि नित चाभ जाते ॥ प्रथम भोजन बहुरि होइ पूजा सुनित अतिहि सुखमा भरे दिवस जाते। स्वर्ग को वास यह लोक में है तिन्हैं नित्य एहि रीति दिन जे बिताते ॥

(नेपथ्य में वैतालिक)

राग सोरठ

सुनिए चित्त धरि यह बात।
बिना भक्षण मांस के सब व्यर्थ जीवन जात ॥
जिन न खायो मच्छ, जिन नहिं कियो मदिरा पान।
कछु कियो नहिं तिन जगत में यह सु निहचै जान ॥
जिन न चूस्यौ अधर सुन्दर और गोल कपोल।

जिन न परस्यौ कुंभ कुच नहिं लखी नासा लोल ॥
एकहू निस जिन न कीनो भोग नहिं रस-लीन ।
जानिए निहचै ते पशु हैं तिन कछू नहिं कीन ॥

दोहा—यह असार संसार में, चार वस्तु है सार ।
जूआ मदिरा मांस अरु; नारी सङ्ग विहार ॥

क्योंकि—

"मांस एव परो धर्मो मांस एव परा गतिः ।
मांस एव परो योगो मांस एव परं तपः ॥"

हे परम प्रचण्ड भुजदण्ड के बल से अनेक पाखण्ड के खण्ड को खण्डन करनेवाले, नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप में बढ़ती जाय और अस्थि-माला धारण करनेवाले शिव जी आप का कल्याण करें आप बिना ऐसी पूजा और कौन करे । (आकर बैठता है)

पुरोहित—वाह वाह ! सच है सच है । !

(नेपथ्य)

पतिहीना तु या नारी पत्नीहीनस्तु यः पुमान् ।
उभाभ्यां षण्डरण्डाभ्यान्न दोषो मनुरब्रवीत् ॥

(सब चकित हो कर)

ऐसा मालूम होता है कि कोई पुनर्विवाह का स्थापन करने वाला बंगाली आता है।

(नंगे सिर बड़ी धोती पहिने बंगाली आता है)

बंगाली—अक्षर जिस के सब बे-मेल, शब्द सब बे-अर्थ, न छन्द वृत्ति, न कुछ, ऐसे भी मंत्र जिस के मुँह से निकलने से सब कार्य्यों के सिद्ध करनेवाले हैं ऐसी भवानी और उन के उपदेष्टा शिवजी इस स्वतन्त्र राजा का कल्याण करें।

(राजा दण्डवत् कर के बैठता है)

राजा—क्यों जी भट्टाचार्य्य जी पुनर्विवाह करना या नहीं ?

बंगाली—पुनर्विवाह का करना क्या ! पुनर्विवाह अवश्य करना। सब शास्त्र की यही आज्ञा है, और पुनर्विवाह के न होने से बड़ा लोकसान होता है, धर्म का नाश होता है, ललनागन पुंश्चली हो जाती हैं। जो विचार कर देखिए तो बिधवागन का विवाह कर देना उन को नरक से निकाल लेना है और शास्त्र की भी आज्ञा है—

" नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेद्यती गच्छेत्तपस्विनीं।
अस्त्रीको विधवां गच्छेन्न दोषो मनुरब्रवीत्॥

राजा—यह वचन कहाँ का है ?

बंगाली—यह वचन श्रीपराशर भगवान का है जो इस युग के धर्म्मवक्ता हैं, यथा—

"कलौ पाराशरी स्मृतिः"

राजा—क्यों पुरोहित जी आप इस में क्या कहते हैं ?

पुरोहित—कितने साधारण धर्म्म ऐसे हैं कि जिनके न करने से कुछ पाप नहीं होता, जैसा—

"मध्याह्ने भोजनङ्कुर्य्यात्"

तो इस में न करने से कुछ पाप नहीं है, वरन व्रत करने से पुण्य होता है। इसी तरह से पुनर्विवाह भी है। इसके करने से कुछ पाप नहीं होता और जो न करे तो पुण्य होता है। इसमें प्रमाण श्रीपराशरीय स्मृति में—

"मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्यव्रतेस्थिता।
सा नारी लभते स्वर्गं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥"

इस वचन से, और भी बहुत जगह शास्त्र में आज्ञा है, सो जो विधवा विवाह करती हैं उन को पाप नहीं होता पर जो नहीं करतीं उन को पुण्य अवश्य होता है, और व्यभिचारिणी होने का जो कहो सो तो विवाह होने पर भी जिसको व्यभिचार करना होगा सो करे हीगी। जो आप ने पूछा वह हमारे समाज में तो यों आता है परन्तु सच पूछिए तो स्त्री तो

जो चाहै सो करै, इनको तो दोष ही नहीं हैं—

"न स्त्री जारेण दुष्यति" "स्त्रीमुखं तु सदा शुचि"

"स्त्रियस्समस्ताः सकला जगत्सु" "व्याभिचाराद्दतौ शुद्धिः"

इन के हेतु तो कोई विधि निषेध है ही नहीं; जो चाहै करैं, चाहें जितना विवाह करें, यह तो केवल एक बखेड़ा मात्र है।

(सब एक मुख होकर) सत्य है, वाह वाह क्यों न हो यथार्थ है।

चोवदार—सन्ध्या भई महाराज !

राजा—सभा समाप्त करो।

(इति प्रथमांक)

द्वितीय अङ्क

(स्थान-पूजाघर)

(राजा, मंत्री, पुरोहित और उक्त भट्टाचार्य्य आते हैं।)

(अपने अपने स्थान पर बैठे)

चोबदार—(आकर) श्रीमच्छङ्कराचार्य्यमतानुयायी कोई वेदान्ती आया है।

राजा—आदर पूर्वक ले आओ ।

(विदूषक आया)

विदूषक—हे भगवान इस वकवादी राजा का नित्य कल्याण हो जिससे हमारा नित्य पेट भरता है । हे ब्राह्मण लोगो ! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस सहित वास करै और उसकी पूँछ मुख में न अटकै । हे पुरोहित नित्य देवी के सामने (मेष) मराया करो और प्रसाद खाया करो ।

(बीच में पीठ फेर कर बैठ गया)

राजा—अरे मूर्ख फिर के बैठ ।

वि— ब्राह्मण को मूर्ख कहते हो फिर हम नहीं जानते जो कुछ तुम्हें दण्ड मिलै, हाँ !

राजा—चल मुझ, उद्दण्ड को कौन दण्ड देनेवाला है ?

वि०—हाँ फिर मालूम होगा ।

(वेदान्ती आये)

राजा—बैठिए ।

वेदान्ती—अद्वैतमत के प्रकाश करनेवाले भगवान् शङ्कराचार्य इस मायाकल्पित मिथ्या संसार से तुझको मुक्त करैं ।

वि—क्यों वेदान्ती जी आप मांस खाते हैं कि नहीं ?

वेदान्ती— तुमको इस से कुछ प्रयोजन है ?

वि०—नहीं, कुछ प्रयोजन तो नहीं है; हमने इस वास्ते पूछा कि आप वेदान्ती अर्थात विना दाँत के हैं सो आप भक्षण कैसे करते होंगे।

वे०—(टेढ़ी दृष्टि से देख कर चुप रह गया)

(सब लोग हँस पड़े)

वि—(बंगाली से) तुम क्या देखते हो, तुम्हें तो चैन है; बंगाली-मात्र मच्छ भोजन करते हैं।

बं—हम तो बंगालियों में वैष्णव हैं, नित्यानन्द महाप्रभु के सम्प्रदाय में हैं और मांस-भक्षण कदापि नहीं करते और मच्छ तो कुछ मांस-भक्षण में है नहीं।

वे०—इस में प्रमाण क्या ?

बं—इसमें यह प्रमाण है कि मत्स्य की उत्पत्ति वीर्य्य और रज से नहीं है। इनकी उत्पत्ति जल से है इस हेतु से जो फलादिक भक्ष्य हैं तो ये भक्ष्य हैं।

पु०—साधु साधु ! क्यों न हो सत्य है।

वे०—क्या तुम वैष्णव बनते हो ? किस सम्प्रदाय के वैष्णव हो ?

बं०—हम नित्यानन्द महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में हैं और श्रीकृष्ण चेतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण ही हैं इसमें प्रमाण श्रीभागवत में—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदैः ।
यज्ञैस्संकीर्तनप्रायै र्यजन्ति ह्यणुमेधसः

वे०—वैष्णवों के आचार्य्य तो चार हैं तो तुम इन चारों से विलक्षण कहाँ से आये ?

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारस्सम्प्रदायिः ।

राजा—जाने दो, इस कोरी बकवाद का क्या फल है ?

"उमासहायं परमेश्वरं विभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं दयालुम"
(पुनः) गोविन्दनारायण माधवेति ।

पु०—कोई वैष्णव और शैव आते हैं ।

राजा—चोबदार जा करके आदर से ले आओ । (चोबदार बाहर गया, वैष्णव और शैव को लेकर फिर आया)

(राजा ने उठकर दोनों को बैठाया)

दोनों—

शंख कपाल लिये कर मैं, कर दूसरे चक्र त्रिशूल सुधारे ।
माल बनी मणि अस्थि की कंठ मैं, तेज दशो दिस मांह पसारे ।
राधिका पारवती दिस बाम, सबै जगनाशन पालन वारे ।
चन्दन भस्म को लेप किए हरि ईश हरै सब दुःख तुम्हारे ॥

वे—महाराज शैव और वैष्णव ये दोनों मत वेद के बाहर हैं ।

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदि देवी मुपासन्ते गायत्री वेदमातरम् ॥

तथा – तस्मान्माहेश्वरी प्रजा।

इस युग का शास्त्र तन्त्र है।

कृतेश्रुत्युक्तमार्गाश्च त्रेतायां स्मृतिभाषिताः।
द्वापरे वै पुराणोक्ताः कलौ वागमसम्भवाः ॥

और कण्ठी रुद्राक्ष तुलसी की माला तिलक यह सब अप्रमाण है।

शैव–मुँह सम्हाल के बोला करो, उस श्लोक का अर्थ सुनो, सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ताः परन्तु, शैवाः वैष्णवा न शाक्ताः प्रोक्ताः। जो केवल गायत्री की उपासना करते हैं वे शाक्त हैं, "पुराणौ हरिणा प्रोक्तौ मार्गौ द्वौ शैववैष्णवौ"॥ और वेदों करके वेद्य शिव ही हैं।

वं०—भवव्रतधरा ये च ये च तन्समनुव्रताः।
पाखंडिनश्च ते सर्वे सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥

इस वाक्य में क्या कहते हैं ?

शै०—इस वाक्य में ठीक कहते हैं इसके आगे वाले वाक्यों से इसको मिलाओ यह दोनों तान्त्रिकों ही के वास्ते लिखते हैं वह शैव कैसे कि ——

"न ट शौच मूढ़धियो जटा-भस्मास्थिधारिणः,
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवं।"

तो जहाँ दैव, सुरा और आसव यही है अर्थात तान्त्रिक शैव, कुछ हम लोग शुद्ध शैव नहीं।

राजा—भला वैष्णव और शैव मांस खाते हैं कि नहीं ?

शै०—महाराज वैष्णव तो नहीं खाते और शैवों को भी न खाना चाहिए परन्तु अबके नष्ट-बुद्धि शैव खाते हैं।

पु०—महाराज वैष्णवों का मत तो जैनमत की एक शाखा है और महाराज दयानन्द स्वामी ने इन सब का खूब खण्डन किया है, पर वह तो देवी की मूर्ति भी तोड़ने को कहते हैं, यह नहीं हो सकता क्योंकि फिर बलिदान किस के सामने होगा।

(नेपथ्य में) नारायण।

राजा—कोई साधू आता है।

(धूर्तशिरोमणि गंडकीदास का प्रवेश)

राजा—आइए गंडकीदास जी।

पु०—गंडकीदास जी हमारे बड़े मित्र हैं यह और वैष्णवों की तरह जंजाल में नहीं फँसे हैं; यह आनन्द से संसार का सुख भोग करते हैं।

गं०—(धीरे धीरे पुरोहित से) अजी इस सभा में हमारी प्रतिष्ठा मत बिगाड़ो वह तो एकान्त की बात है।

पु०—वाह जी, इसमें चोरी की कौन बात है ?

गं०—(धीरे से) यहाँ वह वैष्णव और शैव बैठे हैं।

पु०—वैष्णव तुम्हारा क्या कर लेगा ? क्या किसी की डर पड़ी है ?

वि० महाराज, गंडकीदास जी का नाम तो रंडादास जी होता तो अच्छा होता।

राजा—क्यों ?

चि०—यह तो रंडा ही के दास हैं।

आशंखचक्रांकितबाहुदण्डा गृहे समालिङ्गितबाल-
रण्डाः।

तथाच—भण्डा भविष्यन्ति कलौ प्रचण्डाः।
रण्डामण्डलमण्डनेषु पटवो धूर्ताः कलौ वैष्णवाः।

(शैव वैष्णव और वेदान्ती)

अब हम लोग आज्ञा लेते हैं, इस सभा में रहने का हमारा धर्म नहीं।

वि०—दंडवत् दंडवत्, जाइए भी किसी तरह से।

[सब जाते हैं

वि०—महाराज अच्छा हुआ यह सब चले गये। अब आप भी चलें पूजा का समय हुआ।

राजा—ठीक है।

(जवनिका गिरती है)

इति द्वितीयोऽङ्कः

तृतीय अङ्क

(स्थान—राजपथ)

(पुरोहित गले में माला पहिने टीका दिये बोतल लिये उन्मत्त सा आता है)

पु०— घूमकर) वाह भगवान् करे ऐसी पूजा नित्य हो, अहा ! राजा धन्य है कि ऐसा धर्मनिष्ठ है, आज तो मेरा घर मांस और मदिरा से भर गया, आहा और आज के पूजा की कैसी शोभा थी, एक ओर ब्राह्मणों का वेद पढ़ना, दूसरी ओर बलिदान वालों का कूद-कूद कर बकरा काटना, 'वाचं ते शुन्धामि' तीसरी ओर बकरों का तड़फना और चिल्लाना, चौथी ओर मदिरा के घड़ों की शोभा और बीच में होम का कुण्ड, उसमें मांस का चटपटा कर जलना और उसमें से चिराँहिन की सुगन्ध का निकलना, वैसा ही लोहू का चारों ओर फैलना और मदिरा की छलक, तथा ब्राह्मणों का मद्य पीकर पागल होना, चारों ओर घी और चरबी का बहना, मानो इस मन्त्र की पुकार सत्य होती थी—

"घृतं घृतपावानः पिवत वसां वसापावानः"

अहा वैसी ही कुमारियों की पूजा—

"इमन्त उपस्थं मधुना सृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्द्वितीयं योनिं परिपश्यन्ति धीरा"

अहाहा कुछ कहने की बात नहीं है सब बातें उपस्थित थीं।

"मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः"—

ऐसे ही मदिरा की नदी बहती थी (कुछ ठहर कर) जो कुछ हो मेरा तो कल्याण हो गया। अब इस धर्म के आगे तो सब धर्म तुच्छ हैं और जो मांस न खाये वह तो हिन्दू नहीं जैन है, वेद:में सब स्थानों पर बलि देना लिखा है। ऐसा कौन सा यज्ञ है जो बिना बलिदान के है और ऐसा कौन देवता है जो मांस नहीं खाता, क्या छिपा के क्या खुले-खुले। अंगौछे में मांस और पोथी के चोंगे में मद्य छिपाई जाती है, उस में जिन हिन्दुओं ने थोड़ी भी अँग्रेज़ी पढ़ी है वा जिनके घर मेंमु सल-मानी स्त्री है उनकी तो कुछ बात ही नहीं आज़ाद हैं (सिर पकड़कर) हैं माथा क्यों घूमता है ? अरे मदिरा ने तो ज़ोर किया (उठ कर गाता है) ज़ोर किया ज़ोर किया ज़ोर किया रे, आज तो मैंने नशा ज़ोर किया रे। साँझहि से हम पीने बैठे, पीते पीते भोर किया रे॥ आज तो मैंने०

(गिरता पड़ता नाचता है)

राम रस पीओरे भाई, जो पीए सो अमर होय जाई।
चौके भीतर मुरदा पाकै जेंवलैं नहाय कै ऐसन जनम जर जाई।
रामरस पीओरे भाई॥

अरे जो बकरी पत्ती खात है ताकी काढ़ी खाल।
अरे जो नर बकरी खात हैं तिनको कौन हवाल॥
रामरस पीओरे भाई॥

यह माया हरि की कलवारिन मद पियाय राखा बौराई।
एक पड़ा भुईयाँ में लोटै दूसर कहै चोखी दे भाई॥
रामरस पीओरे भाई॥

अरे चढ़ी है सो चढ़ी नहिं उतरन को नाम।
भर रही खुमारी तव क्या रे किसी से है काम॥
रामरस पीओरे भाई॥

मीन काट जल धोइए खाये अधिक पियास।
अरे तुलसी प्रीत सराहिये मुये मीत की आस॥
रामरस पीओरे भाई॥

अरे मीनपीन पाठीन पुराना भरि भरि भार कहारन आना।
महिष खाइ कर मदिरा पीना अरे गरजा रे कुंभकरनवलवाना॥
रामरस पीओरे भाई॥

ऐसा है कोइ हरिजन मोदी तन की तपन बुझावैगा।
पूरन प्याला पियै हरी का फेर जनम नहिं पावैगा॥
रामरस पीओरे भाई॥

अरे भक्तों ने रसोई की तो मरजादही खोई।
कलिये की जगह पकने लगी रामतरोई रे॥
रामरस पीओरे भाई॥

भगतजी गदहा क्यों न यो।
जव से छोड़ौ मांस मछरियाँ सत्यानाश गयो॥
रामरस पीओरे भाई॥

अरे एकादशी के मछली खाई।
अरे कबौं मरे बैकुंठै जाइ॥

रामरस पीओरे भाई

अरे तिलभर मछली खाइवो कोटि गऊ को दान।
ते नर सीधे जात हैं सुरपुर बैठि विमान॥
रामरस पीओरे भाई॥
ऐसी गाढ़ी पीजिए ज्यौं मोरी की कीच।
घर के जानै मर गये आप नशे के बीच॥

रामरस पीओरे भाई॥

(नाचता नाचता गिर के अचेत हो जाता हैं)

(मतवाले बने हुए राजा और मंत्री आते है)

राजा—मन्त्री, पुरोहित जी तो बेसुध पड़े हैं।

मं०—महाराज, पुरोहित जी आनन्द में हैं। ऐसे ही लोगों को मोक्ष मिलता है।

राजा—सच है, कहा भी है-

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा धरणीतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरो मुक्तिमवाप्नुयात्॥

मं०-महाराज, संसार के सार मदिरा और मांस ही हैं।

" मकाराः पञ्च दुर्लभाः। "

राजा—इस में क्या सन्देह !

वेदवेद सबही कहैं, भेद न पायो कोय !
विन मदिरा के पान सों मुक्ति कहो क्यों होय ॥

मं०—महाराज, ईश्वर ने बकरा इसी हेतु बनाया ही है, नहीं और बकरा बनाने का काम क्या था ? बकरे केवल यज्ञार्थ बने हैं और मद्य पानार्थ ।

राजा—यज्ञो वैविष्णुः यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः यज्ञाद्भवति पर्ज्जन्यः, इत्यादि श्रुतिस्मृति में यज्ञ की कैसी स्तुति की है और "जीवो जीवस्य जीवनं" जीव इसी हेतु हैं क्योंकि—

"मांस भात को छोड़ के का नर खैहैं घास ।"

मं०—और फिर महाराज, यदि पाप होता भी हो तो मूर्खों को होता होगा, जो वेदान्ती अपनी आत्मा में रमण करने वाले ब्रह्मस्वरूप ज्ञानी हैं उनको क्यों होने लगा ? कहा है न—

यावद्धतोस्मि हंतास्मीत्यात्मानम्मन्यतेऽस्वदृक् ।
तावदेवाभिमानज्ञो बाबधकतामिया ॥
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नहन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

इससे हमारे आपसे ज्ञानियों को तो कोई बन्धन ही नहीं है । और सुनिए मदिरा को अब लोग कमेटी करके उठाया चाहते हैं वाह व वाह !

राजा—छिः अजी मद्यपान गीता में लिखा है "मद्याजी मां नमस्कुरु।"

मं०—और फिर इस संसार में मांस और मद्य से बढ़ कर कोई वस्तु है भी तो नहीं।

राजा—आहा ! मदिरा की समता कौन करैगा जिसके हेतु लोग अपना धर्म छोड़ देते हैं। देखो—

मदिरा ही के पान हित, हिन्दू धर्महि छोड़ि।
बहुत लोग ब्राह्मो बनत, निजकुल सौ मुख मोड़ि ॥
ब्रांडी को अरु ब्राह्म को पहिलो अक्षर एक।
तासों ब्राह्मो धर्म में, यामें दोस न नेक ॥

मं० - महाराज, ब्राह्मों को कौन कहै हम लोग तो वैदिक धर्म को मान कर सौत्रामणि यज्ञ कर के मदिरा पी सकते हैं।

राजा —सच है देखो न—

मदिरा को तो अन्त में अरु आदि राम को नाम।
ता सों ता मैं दोस कछु, नहिं यह बुद्धि ललाम ॥
तिष्ठ तिष्ठ क्षन मद्य हम, पियैं न जब लौं नीच।
यह कहि देवी क्रोध सों, हत्यौ शुम्भ रन बीच ॥
मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पी कै नाश सब, करत शम्भु भगवान ॥
विष्णु वारुनी पोर्ट, पुरुषोत्तम मद्य मुरारि।
शाम्पिन शिव गौर गिरिक, ब्रांडी ब्रह्म विचारि ॥

मं०—और फिर महाराज, ऐसा कौन है जो मद्य नहीं पीता, इससे हमीं लोग न अच्छे जो विधि-पूर्वक वेद की रीत से पान करते और यों छिपके इस समय में कौन नहीं करता।

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु सय्यद सेख पठान।
दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान॥
पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृन्द।
गौतम पियत आनंद सों, पियत अग्र के नन्द॥
ब्राह्मण सब छिप छिप पियत, जामैं जानि न जाय।
पोथी के चौगान भरि, बोतल बगल छिपाय॥
वैष्णव लोग कहावहीं, कंठी मुद्रा धारि।
छिप छिप मदिरा पियहिं, यह जिय माँझ विचारि॥
होटल में मदिरा पियैं, चोट लगै नहिं लाज।
नोट लए ठाढ़े रहत, टोटल दैवे काज॥
राजा राजकुमार मिल, बाबू लीने संग।
बार-बधुन लै बाग मैं, पीअत भरे उमंग॥

राजा—सच है इसमें क्या सन्देह है।

मं०—महाराज मेरा सिर घूमता है और ऐसी इच्छा होती है कि कुछ नाचूँ और गाऊँ।

राजा—ठीक है मैं भी नाचूँगा गाऊँगा, तुम प्रारम्भ करो।

मं०—(उठ कर राजा का हाथ पकड़ कर गिरता पड़ता नाचता और गाता है)

पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरी रसका रे।
तननुं तननुं तननुं में गाने का है चसका रे॥
निनि धध पप मम गग रिरि सासा भरले सुर अपनेवसका रे
४ धिधिकट धिधिकट धिधकट धाधा बजै मृदङ्ग थाप कसका रे

५ भट्ठी नहिं सील लोढ़ा नहीं घोर घार।
पलकन की फेरन में चढ़त धुआँ धार॥
पीले अवधू के

६ कलवारिन मदमाती काम किलोल।
भरि भरि देत पियलवा महा ठठोल॥
पीले अवधू के

७ अरी गुलाबी गाल की लिये गुलाबी हाथ।
मोहि दिखाव मदकी झलक छलक पियालो साथ॥
पीले अवधू के मतवाले

८ वहार आई है भरदे वादए गुलगूँ से पैमाना।
रहै लाखों वरस साकी तेरा आवाद मैख़ाना॥
सम्हल बैठो अरे मस्तो जरा हुशियार हो जाओ।
कि साक़ी हाथ में मै का लिए पैमाना आता है॥
उड़ाता खाक सिर पर झूमता मस्ताना आता है।

पीले अवधू के—अहाँ अहाँ अहाँ।
यह अठरंग है लोग चतुरंग ही गाते हैं।
न जाय जाय मोलों मदुवा भरीलों न जाय

तब फिर कहाँ से—

ड्रिङ्क डीप आर स्टेट नाट दि पायरियन स्प्रिंग

(Drink deep or state not the Pierean spring.)

पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरी रसका रे।

(एक दूसरे के सिर पर धौल मार कर ताल देकर नाचते हैं)

(फिर एक पुरोहित का सिर पकड़ता है दूसरा पैर और उसको लेकर नाचते हैं)

(जवनिका गिरती है)

इति तृतीयोऽङ्क

चतुर्थ अङ्क

(स्थान-यमपुरी)

(यमराज बैठे हैं और चित्रगुप्त पास खड़े हैं)

(चार दूत, राजा, पुरोहित, मंत्री, गंडकी दास, शैव और वैष्णव को पकड़ कर लाते हैं)

१ दूत—(राजा के सिर में धौल मार कर) चल बे चल; अब यहाँ तेरा राज नहीं है कि छत्र चँवर होगा, फूल से पैर रखता है। चल भगवान यम के सामने, और अपने पाप का फल भुगत, बहुत कूद कूद के हिंसा की और मदिरा पी, सौ सोनार की न एक लोहार की (दो धौल और लगाता है)

२ दूत—(पुरोहित को घसीट कर) चलिए पुरोहित जी, दक्षिणा लीजिए, वहाँ आपने चक्र-पूजन किया था, यहाँ चक्र में आप चलिए, देखिए बलिदान का कैसा बदला लिया जाता है।

३ दूत—(मंत्री की नाक पकड़ कर) चल वे चल, राज के प्रबन्ध के दिन गये, जूती खाने के दिन आये, चल अपने किये का फल ले।

४ दूत—(गंडका दास का कान पकड़ कर झोंका देकर) चल रे पाखंडी चल, यहाँ लम्बा टीका काम न आवेगा, देख वह सामने पाखंडियों का मार्ग देखने वाले सर्प मुँह खोले बैठे हैं।

(सब यमराज के सामने जाते हैं)

यम०—(वैष्णव और शैव से) आप लोग यहाँ आकर मेरे पास बैठिए।

वै० और शै०—जो आज्ञा। (यमराज के पास बैठ जाते हैं)

यम०—चित्रगुप्त, देखो तो इस राजा ने कौन-कौन कर्म्म किये है।

चित्र०—(बही देख कर) महाराज सुनिए, यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इसने धर्म को अधर्म माना, जो जी चाहा किया और उसकी व्यवस्था पण्डितों से ले ली, लाखों जीव का इस ने नाश किया और हजारों घड़े मदिरा के पी गया पर आड़ सर्वदा धर्म की रक्खी, अहिंसा, सत्य, शौच, दया, शांति

और तप आदि सच्चे धर्म इस ने एक न किये, जो कुछ किया वह केवल वितण्डा कर्म जाल किया, जिसमें मांस-भक्षण और मदिरा पीने को मिले, और परमेश्वर प्रीत्यर्थ इस ने एक कौड़ी भी नहीं व्यय की, जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हेतु।

यम०—प्रतिष्ठा कैसी, धर्म और प्रतिष्ठा से क्या सम्बन्ध?

चि०—महाराज, सरकार अङ्गरेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ इंडिया" की पदवी मिलती है।

यम०—अच्छा! तो बड़ा नीच है, क्या हुआ मैं तो उप स्थित ही हूँ।

"अन्तः प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः"

भला पुरोहित के कर्म तो सुनाओ।

चि०—महाराज, यह शुद्ध नास्तिक है, केवल दम्भ यज्ञोपवीत पहिने है, यह तो इसी श्लोक का अनुरूप है—

अन्तश्शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले॥

इसने शुद्ध चित्त से ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया जो जो पक्ष राजा ने उठाये उसका समर्थन करता रहा और टके टके पर धर्म छोड़ कर इसने मनमानी व्यवस्था दी दक्षिणा मात्र दे दीजिये फिर जो कहिए उसी में पण्डितजी

सम्मति है। केवल इधर-उधर कमंडलाचार करते इसका जन्म बीता और राजा के संग से मांस-मद्य का भी बहुत सेवन किया, सैकड़ों जीव अपने हाथ से वध कर डाले।

यम०—अरे यह तो बड़ा दुष्ट है, क्या हुआ मुझसे काम पड़ा है यह बचा जी तो ऐसे ठीक होंगे जैसे चाहिए, अब तुम मंत्री जी के चरित्र कहो।

चित्र०—महाराज, मन्त्री जी की कुछ न पूछिए, इसने कभी स्वामी का भला नहीं किया, केवल चुटकी बजा कर हाँ में हाँ मिलाया, मुँह पर स्तुति पीछे निन्दा, अपना घर बनाने से काम स्वामी चाहे चूल्हे में पड़े, घूस लेते जन्म बीता, मांस और मद्य के विना इसने न और धर्म जाने न कर्म जाने। यह मंत्री की व्यवस्था है, प्रजा पर कर लगाने में तो पहिले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।

यम०—भला ये श्रीगंडकी दास जी आये हैं इनका पवित्र चरित्र पढ़ो कि सुन कर कृतार्थ हों, देखने में तो लम्बे लम्बे तिलक दिये हैं।

चित्र०—महाराज, ये गुरु लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिए, केवल दम्भार्थ इनका तिलक मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्ति को दंडवत् न किया होगा-पर मन्दिरों में जो स्त्रियाँ आईं उनको सर्वदा तकते रहे, महाराज, इन्हों ने अनेकों को कृतार्थ किया है और सब

तो, मैं श्रीरामचन्द्र जी का श्रीकृष्ण का दास हूँ, पर जब स्त्री सामने आवे तो उससे कहेंगे मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी, और स्त्रियाँ भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं, हा ! महाराज, ऐसे पापी धर्मवंचकों को आप किस नरक में भेजिएगा।

(नेपथ्य में बड़ा कलकल होता है)

यम०—कोई दूत जाकर देखो यह क्या उपद्रव है।

१ दूत—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज संयमनीपुरी की प्रजा बड़ी दुखी है, पुकार करती है कि ऐसे आज कौन पापी यमपुर में आये हैं जिनके अँग के वायु से हम लोगों का सिर घूमा जाता है और अँग जलता है, इनको तो महाराज शीघ्र ही नरक में भेजें नहीं तो हम लोगों के प्राण निकल जायँगे।

यम०—सच है, ये ऐसे ही पापी हैं, अभी मैं इनका दण्ड करता हूँ, कह दो घबराएँ न।

१ दूत—जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आता है)

यम०—(राजा से) तुझ पर जो दोष ठहराये गये हैं, बोल उनका क्या उत्तर देता है ?

राजा—(हाथ जोड़ कर) महाराज, मैंने तो अपने जान सब धर्म ही किया कोई पाप नहीं किया, जो मांस खाया वह देवता पितर को चढ़ा कर खाया और देखिए महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मणों ने भूख के मारे गोवध करके खा लिया पर श्राद्ध कर लिया था इस से कुछ नहीं हुआ।

यम०—कुछ नहीं हुआ, लगें इसको कोड़े।

१दूत—(कोड़े मारता है)।

राजा—(हाथ से बचा बचा कर) हाय हाय दुहाई दुहाई, सुन लीजिए—

सप्तव्याधो दशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ।
चक्रवाकाश्शरद्वीपे हंसास्सरसि मानसे॥
तेपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घ मध्वानं यूयं किमत्रसीदथ॥

यह वाक्य लोग श्राद्ध के पहले शुरू होने को पढ़ते हैं फिर मैंने क्या पाप किया। अब देखिए, अङ्गरेजों के राज्य में इतनी गोहिंसा होती है सब हिन्दू 'बीफ'खाते हैं उन्हें आप दण्ड नहीं देते और हाय हम से धार्म्मिक की यह दशा, दुहाई वेदों की, दुहाई धर्म्म-शास्त्र की, दुहाई व्यासजी की, हाय रे मैं इनके भरोसे मारा गया।

यम०—बस चुप रहो, कोई है ? यह अन्धतामिस्र नामक नरक में जायगा, अभी इसको अलग रक्खो।

१दूत—जो आज्ञा महाराज (पकड़ खींचकर एक ओर खड़ा करता है) यम०—(पुरोहित से) बोल बे ब्राह्मणाधम ! तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है ?

पुरो०—(हाथ जोड़ कर)महाराज, मैं क्या उत्तर दूँगा, वेद पुराण सब उत्तर देते हैं।

यम०—लगें कोड़े, दुष्ट वेद पुराण का नाम लेता है।

२ दूत—जो आज्ञा। (कोड़े मारता है)

पुरो०—दुहाई दुहाई, मेरी बात तो सुन लीजिए—यदि मांस खाना बुरा है तो दूध क्यों पीते हैं, दूध भी तो मांस ही है। अरे अन्न क्यों खाते हैं अन्न में भी तो जीव है, और वैसे ही सुरापान बुरा है तो वेद में सोमपान क्यों लिखा है और महाराज मैंने तो बकरे खाये वह जगदम्बा के सामने बलि देकर खाते, अपने हेतु कभी हत्या नहीं की और न अपने राजा साहब की भाँति मृगया की। दुहाई, ब्राह्मण व्यर्थ पीसा जाता है और महाराज मैं अपनी गवाही के हेतु बाबू राजेन्द्रलाल के दोनों लेख देता हूँ, उन्होंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध कर दिया है कि मांस की कौन कहे, गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं, आगे के हिन्दू सब खाते पीते थे। आप चाहिए एशियाटिक ससोाइटी का जर्नल मँगा कर देख लीजिए।

यम०—बस चुप, दुष्ट ! जगदम्बा कहता है और फिर उसीके सामने उसी जगत् के एक बकरे को अर्थात् उसके पुत्र ही को बलि देता है, अरे दुष्ट, अपनी अंबा कह, जगदम्बा क्यों कहता है, क्या बकरा जगत् के बाहर है ? चाण्डाल सिंह को बलि नहीं देता—

"अजापुत्रं वलिं दद्याद्देवोदुर्बलघातक:"

कोई है ? इसको सूचीमुख नामक नरक में डालो। दुष्ट कहीं का वेद पुराण का नाम लेता हैं मांस मदिरा खाना पीना है तो यों ही खाने में किसने रोका है, धर्म्म को बीच में क्यों डालता हैं, बाँधो !

२दूत—जो आज्ञा महाराज । (बाँध कर एक ओर खड़ा करता है) यम०— (मन्त्री से) बोल वे, तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है ?

मन्त्री— (आप ही आप) मैं क्या उत्तर दूँ, यहाँ तो सब बात बे रङ्ग है इन भयावनी मूर्तियों को देखकर प्राण तो सूखे जाते हैं, उत्तर क्या दूँ । हाय हाय, इनके ऐसे बड़े बड़े दाँत हैं कि मुझे तो एक ही कवर कर जायँगे ।

यम०—बोल जल्दी ।

३ दूत०—(एक कौड़ा मार कर) बोलता है कि नहीं ?

मन्त्री (हाथ जोड़ कर) महाराज अभी सोच कर उत्तर देता हूँ (कुछ सोच कर) (चित्रगुप्त से) आप मुझे एक वेर राज्य पर भेज दीजिए मैंने जितना धन बड़ी बड़ी कठिनाई और बड़े बड़े अधर्म से एकत्र किया है सब आप को भेंट करूँगा और मैं निरपराधी कुटुम्बी हूँ मुझे छोड़ दीजिए ।

चित्र०—(क्रोध से) अरे दुष्ट, यह भी क्या मृत्यु लोक की कचहर है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहाँ के न्यायकर्त्ताओं की भाँति जङ्गल से पकड़ कर आये हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते, जहाँ तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेने वालों की भी होगी ।

यम०—(क्रोध से) क्या यह दुष्ट द्रव्य दिखाता है भलारे दुष्ट ! कोई है, इस को पकड़ कर कुम्भीपाक में डालो ।

३दूत०—जो आज्ञा महाराज (पकड़ कर खींचता है)।

यम०—अब आप बोलिए बाबाजी, आप अपने पापों का क्या उत्तर देते हैं ?

गंडकी—मैं क्या उत्तर दूँगा, पाप पुण्य जो करता है ईश्वर करता है इसमें मनुष्य का क्या दोष है।

ईश्वरस्सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्व्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया॥
मैं तो आज तक सर्वदा अच्छा ही करता रहा।

यम०—कोई है ? लगें कोड़े दुष्ट को, अब ईश्वर फल भी भुगतेगा, हाय हाय ये दुष्ट दूसरों की स्त्रियों को माँ और बेटी कहते हैं और लम्बा २ टीका लगा कर लोगों को ठगते हैं।

४ दूत—महाराज, यह किस नरक में जायगा (कोड़े मारता है)

गंडकी--हाय हाय दुहाई, अरे कंठी टीका कुछ काम न आया अरे कोई नहीं है जो इस समय बचावे।

यम०—यह दुष्ट रौरव नरक में जायगा जहाँ इस को ऐसे ही अनेक धर्म्मवंचक मिलेंगे। ले जाओ सब को।

(चारों दूत चारों को पकड़ कर घसीटते और मारते हैं और चारों चिंल्लाते हैं)

चारों-- अरे "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।"
हायरे "अग्निष्टोमे पशुमालभेत।"
भैया रे "श्रोत्रं ते शुंधामि।"

(यही कह कर चिल्लाते हैं और दूत लोग उन को घसीट कर मारते लेजाते हैं)

यम—(शैव और वैष्णव से) आप लोगों की अकृत्रिम भक्ति से ईश्वर ने आपको कैलास और वैकुण्ठ के वास की आज्ञा दी है सो आप लोग जाइए और अपने सुकृत का फल भोगिए। आप लोगों ने इन धर्म्मवंचकों की दशा तो देखी ही है, देखिए पापियों की यह गति होती है और आप से सुकृतियों को ईश्वर प्रसन्न होकर सामीप्य मुक्ति देता है सो लीजिए, आप लोगों को परम पद मिला, बधाई है,कहिए इस से भी विशेष कोई आपका हित हो तो मैं पूर्ण करूँ।

शै०और वै०—(हाथ जोड़ कर) भगवन् इस से बढ़ कर और हम लोगों का क्या हित होगा तथापि यह नाटकाचार्य्य भरत ऋषि का वाक्य सफल हो—

निज स्वारथ को धरम दूर या जग सों होई।
ईश्वर पद मैं भक्ति करैं छल बिनु सब कोई॥
खल के विष बैनन सों मत सज्जन दुख पावैं।
छुटै राजकर मेघ समय पै जल बरसावैं॥
कजरी ठुमरिन सों मोड़ि मुख सत कविता सब कोई कहै।
यह कवि बानी बुध बदन में रवि ससि लों प्रगटित रहै॥

(सब जाते हैं

(जवनिका गिरती है)

इति चतुर्थाङ्क

उषा

परिचय

प्रयाग-विश्व-विद्यालय के हिन्दी-अध्यापक, प्रो० रामकुमार वर्मा, कवि, आलोचक एवं एकांकी नाटककार के रूप में हिन्दी में एक विशेष स्थान रखते हैं। अपनी 'चित्र रेखा' नाम्नी काव्य पुस्तक पर आपने 'देव पुरस्कार' भी प्राप्त किया है। आपने अब तक 'पृथ्वीराज की आँखें' आदि अनेक एकांकी नाटक लिखे हैं जो सजीव मानव जीवन के जीते जागते चित्र है। 'उषा' आपका बहुत ही सफल एकांकी नाटक है, जिस में आजकल की सभ्यता की चकाचौंध में पड़ी हुई उषा अपने पति प्रमोद से विरक्त हो उसे छोड़ कर जाना चाहती है, अपने एक सहपाठी अशोक —डिप्टी कलेक्टर अशोक—के साथ। पर समय रहते उसकी आँखें राजे नामकी एक लड़की के मिलने पर खुल जाती हैं और वह सम्पादक और संवाददाता प्रमोद के 'संवाद' का मूल्य आँक पाती है। हमारे प्रेम की एक जीती जागती समस्या इस नाटक में निस्सन्देह विद्यमान है।

मुख्य पात्र

प्रमोद—एक सम्पादक, संवाददाता और परोपकारी प्राणी।

उषा—प्रमोद की भ्रान्त पत्नी।

अशोक—उषा का कॉलिज का साथी।

राजे—एक कन्या, जिसको ताँगे की दुर्घटना से प्रमोद ने बचाया था।

नाटक

(प्रमोद का मकान, समय ४ बजे शाम)

(प्रमोद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम. ए. पास कर चुका है, पर उस पर फ़ैशन का प्रभाव बिलकुल नहीं है। वह साफ़ धोती और आधी बाँह की खद्दर की कमीज़ पहने हुए है। पैर में स्लीपर्स। बाल बिखरे हुए।

वह 'राष्ट्रवाणी' के सम्पादन-विभाग में काम करता है, संवाददाता है। समाचार संग्रह करना उसका कार्य है। इस समय भी वह टेबल पर काम कर रहा है। रविवार का दिन है, पर उसके कार्यक्रम में रविवार नहीं। वह एक अंग्रेजी सामाचार-पत्र को सामने रखकर उससे समाचार संग्रह कर रहा है। उसकी आयु पच्चीस वर्ष की है; पर कार्याधिक्य से वह अधिक आयु का जान पड़ता है। मुख पर जैसे ज़िम्मेदारी की गंभीरता है।

उसके समीप ही उसकी स्त्री उषा, बी. ए., मोज़ा बुन रही है। वह लगभग १८ वर्ष की होगी। सुन्दर मुख और निखरा हुआ रंग। फ़ैशन ने उस पर पूर्ण प्रभाव छोड़ रखा है। सलोने मुख पर क्रीम और उस पर पाउडर की चाँदनी ! क्रेप-डी-शीन की साड़ी और उसपर वायल का जम्पर। कानों में नये डिजाइन के इयर-रिंग। कन्धे के समीप डायमण्ड ब्रूच। गले में सोने की चेन और स्वस्तिका। हाथ में सोने की गोल घड़ी और एक पतली रेशमी चूड़ी।

वह कुछ अस्थिर है। प्रमोद की नज़र बचाकर कमरे में लगी हुई क्लॉक देख लेती है। प्रमोद अपने कार्य में लीन है। वह लिखने के बाद अपने समाचार-संग्रह का अवतरण पढ़ता है:—)

भयंकर दुर्घटना !

आहत स्त्री-पुरुषों का लोमहर्षक चीत्कार !!

बिहटा, १८ जुलाई—अभी तक की ट्रेन-दुर्घटनाओं में सबसे भयानक वह है जो पटना के समीप बिहटा नामक स्थान में १७ वीं तारीख की रात्रि को घटी । पञ्जाब-हावड़ा एक्सप्रेस, जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई (रुक कर अँग्रेजी अख़बार की ओर देखकर) सम् थ्री हण्ड्रेड पैसिंजर्स हाँ, (फिर अपने अवतरण को पढ़ता हुआ) तीन सौ यात्री घायल हुए । सौ की तो मृत्यु ही हो गई । ऐंजिन रास्ते से टेढ़ा होकर नीचे गिर पड़ा जैसे कोई दैत्य ठोकर खाकर बैठ गया हो । चार-पाँच डिब्बे चूर-चूर हो गये । चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है । कोई-कोई यात्री तो अंग-विहीन हो गये । एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गये । उसकी नव-विवाहिता पत्नी ....

उषा—(ऊब कर) डैश इट ऑफ़ ! चार बज चुके, तुम्हें अपने काम से फ़ुरसत ही नहीं । (अस्थिर होकर घड़ी की ओर देखती है फिर मौज़ा बुनने की कोशिश करती है)

प्रमोद—(पूर्ववत् ध्यान-मग्न) उसकी नव-विवाहिता पत्नी को भी चोट लगी है, किन्तु वह साधारण है; पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह शारीरिक चोट से कितनी भयानक है । उसका—

उषा (हाथ की घड़ी की ओर देख कर) कब तक तुम्हारा

काम समाप्त होगा ? कहीं बाहर निकलना भी चाहूँ तो मर के भी नहीं निकल सकती। चार बज चुके। (खिन्न मुद्रा)

प्रमोद—(उषा की ओर देख कर) तो क्या हुआ उषा ? जब काम सिर पर ही है, चार बजें चाहे चौदह। उसे तो करना ही होगा।

उषा—(व्यंग्य से) अच्छा काम करना होगा ! मैं तो मरी जा रही हूँ। चौबीसों घण्टे घर में बन्द रहूँ, यह मुझ से नहीं होगा। कहाँ कॉलेज डेज़ में पिकनिक, मीटिंग, लेक्चर्स, सिनेमा और कहाँ यह क़ैदख़ाना ! ऐसे तो मैं मर जाऊँगी।

प्रमोद—तो तुम्हें बाहर जाने से रोकता कौन है उषा ? जाओ जहाँ जी चाहे। पार्क में घूमो, सिनेमा जाओ, यहाँ जाओ, वहाँ जाओ। मैं कब तुम्हें रोकता हूँ ? तुम्हारे आहार-विहार के जीवन में मैं रुकावट नहीं डालना चाहता उषा; पर सोचो, मैं कैसे सब समय तुम्हारा साथ दे सकता हूँ ? 'राष्ट्र-वाणी' न्यूज़ पेपर के ऑफ़िस में हूँ। रोज़ समाचार भेजना पड़ता है। अनुवाद करना पड़ता है। अग्रलेख लिखना पड़ता है। अगर यह सब न करूँ तो काम कैसे चलेगा ? यह संवाद आज ही—अभी ही—शाम को भेजना है, नहीं तो कल अख़बार कैसे निकलेगा ? नया समाचार तो रखना ही होगा। बिहटा की ट्रेन-दुर्घटना..........।

उषा—(झुँझलाकर) ट्रेन दुर्घटना, भूकम्प, प्लेग ! क्या करूँ ? बैठ कर रोऊँ ? संसार में तो यह रोज़ का काम है। इसके

लिए कोई नहाना, खाना, सोना, छोड़ दे ? तुम्हारे लिए भी यह रोज की बात है। सबको सण्डे की छुट्टी है, आप आज भी खच्चर की तरह जुते हुए हैं। और अगर तनख्वाह भी अच्छी होती तो ग़नीमत थी·······गिने हुए चालीस ···········श: (घृणा-प्रदर्शन)

प्रमोद— शांति से) उषा, तुम चाहे जो कुछ कह लो, पर अगर एम० ए० पास करने पर भी मैं ऊँची जगह न पा सका तो इसमें मेरा कितना दोष है ? कितनी जगह मैं घूमा। लखनऊ, रुरकी, जमशेदपुर—कितनी जगह एप्लीकेशन भेजीं, कितने साहबों से मिला । पर एक ही उत्तर—जगह नहीं है। सुना था, अनएम्प्लायमेण्ट कमेटी भी बैठी थी। सप्रू महोदय ने कितनों को क्रास-एग्जामिन कर रिकमेण्डेशन्स भेजीं, पर उसका परिणाम क्या हुआ ? कुछ नहीं। सब झूठ—ओफ़, कहाँ कहाँ मैं नहीं गया ? किस किस से मैंने प्रार्थना नहीं की ? मैंने सब कुछ किया केवल आत्म-हत्या नहीं की। यही मेरा दोष है।

उषा—आत्म-हत्या क्यों करते ? पर यह चालीस की अनिश्चित नौकरी तो गले से नहीं उतरती ? तुम्हारे एम० ए० पास होने पर ही तो मेरे पिता ने तुम्हें पसन्द किया था। उन्हें क्या मालूम था कि पोस्ट-ग्रेजुएट महाशय डिप्टी कलेक्टर न होकर चालीस रुपये के संवाददाता होंगे । (घृणा से) संवाददाता—अन्नदाता—कितना फूहड़ शब्द है ! डिप्टी कलेक्टर और संवाददाता ! उफ़, कल्पना और सत्य में

कितना अन्तर है ! जितना चारसौ और चालीस में । चालीस से मेरा क्या होगा ? आप खाइएगा या मुझे खिलाइएगा ? चालीस (सोच कर) सुना जी, मैं घर जाऊँगी ।

प्रमोद—उषा, इतनी अवहेलना क्यों करती हो ? आखिर इसमें मेरा क्या दोष ? इतनी मेहनत करता हूँ, तब इतना मिलता है । यदि न करूँ तो इतना भी नसीब न हो । मैं यदि किसी प्रकार समय बरबाद करता, काम न करता, मेहनत न करता, तो तुम्हारा कहना ठीक था । पर मैं काम करते करते हैरान हूँ और तुम खुश नहीं हो ? मैं जानता हूँ कि इन चालीस रुपयों में तुम्हारी एक साड़ी भी न आवेगी । तुम्हें तरह-तरह के ब्रूचेज, जम्पर, हेयरपिंस, इयर-रिंग्ज चाहिए । बी० ए० में तो तुम न जाने क्या क्या पहनती थीं, जिनके नाम भी मुझे याद नहीं । पर यह सब कहाँ से लाऊँ ? मैं स्वयं लज्जित हूँ, पर बतलाओ मेरे लिए कौन-सा रास्ता है ? मैं अपने ऊपर एक पैसा भी खर्च नहीं करता । सब तुम्हारा है—सब तुम्हारा है ।

उषा—खैर, तुम्हारा दोष न हो, पर मेरा मन तो यहाँ नहीं लगता । मैं अपने घर जाऊँगी ।

प्रमोद—(स्नेह से) मेरी उषा, यदि प्रसन्नता से घर जा रही हो तो सौ बार जाओ, पर यदि अप्रसन्नता से जा रही हो तो मैं क्या कहूँ ! मेरा तुम्हारा विवाह तो हो चुका है । भाग्य की जंजीर ने हमें तुम्हें दो पेड़ों की तरह उलझा दिया

है सब समय के लिए। यह स्थिति अब सुलझ नहीं सकती। किन्तु यदि इसी में तुम्हारी प्रसन्नता है तो............।

उषा—प्रसन्नता और अप्रसन्नता की बात नहीं है। मेरी माँ की तबियत भी कुछ ठीक नहीं है। उन्हें देखने जाना है।

प्रमोद—(लाचार होकर) मेरे पास छुट्टी नहीं है। कहो तो लेलूँ जितने दिन की तुम कहो।

उषा—आपके कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मुझे किसी का अहसान नहीं चाहिए। मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी। वे भी तो देहरादून के रहने वाले हैं।

प्रमोद—अशोक के साथ............।

उषा—हाँ, अशोक के साथ। तुम उन्हें जानते होगे। हम लोगों के साथ बी० ए० में पढ़ते थे। जार्ज-टाउन में रहते थे। उनके पास क्रायसलर कार भी थी।

प्रमोद—हाँ, मैं अशोक को तो अच्छी तरह से जानता हूँ। वे तो अपने साथ ही पढ़ते थे। बिलकुल अप-टु-डेट।

उषा—हाँ, मैं उन्हें अपना भाई मानती हूँ। वे आज ही शाम को पटना से आनेवाले हैं। (क्लाक की ओर देखती है) शायद कल ही देहरादून चले जावें। सुनते हैं उन्हें मुंसिफी की जगह मिल गई है। वे अपनी जगह पर जाने से पहले देहरा

दून जाकर अपने पिता से मिलना चाहते हैं । न हो तो मैं भी साथ-साथ चली जाऊँ ।

प्रमोद—क्या वे आज ही शाम को आनेवाले हैं ?

उषा—हाँ, आज ही शाम को करीब साढ़े-चार बजे । (हाथ की घड़ी की ओर देखती है) मुमकिन है आते हों । साढ़े चार बज चुके हैं ।

प्रमोद—तुम उन्हें अपना भाई कब से मानती हो ?

उषा—बहुत दिनों से । क्या तुम्हें कुछ सन्देह है ? देहरादून में भी मेरे घर अक्सर आया करते थे । मैं उनसे अशोक भाई कहा करती थी । यूनीवर्सिटी में भी मैं उन्हें...।

प्रमोद—खैर, यह सब कहने की आवश्यकता नहीं । यदि तुम उचित समझती हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है । तुम अपनी स्थिति बहुत अच्छी तरह से समझती हो । फिर यदि माता जी की तबियत ठीक नहीं है तो मुझे तो तुम्हारे जाने में कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती ।

उषा—(संतोष से) बस ठीक है । मैं शीघ्र ही जाने का विचार करूँगी ।

प्रमोद—अच्छा तो अब मैं अपनी दुर्घटना का संवाद पूरा कर लूँ ?

उषा—(घड़ी देख कर) पर देखिए, मेरे सिर में अक्सर रात

को जो दर्द हो जाया करता है उसके लिए डाक्टर बेनर्जी ने यू० डी० क्लोन की पट्टी रखने के लिए कहा है। अच्छा हो, यदि आप उसे ले आवें, नहीं तो फिर दूकान बन्द हो जावेगी। काम तो आप रात में भी कर सकते हैं।

प्रमोद—यों तो दूकानें ९ बजे रात तक खुली रहती हैं, पर तुम्हारे कहने से मैं अभी ही लेता आऊँगा। फिर निश्चिंत होकर काम करूँगा। (उठ कर खूँटी से कोट पहनता है)

उषा—और साथ में जुकाम के लिये वैपेक्स भी।

प्रमोद—(कोट पहनते हुए)........और कुछ ...... ?

उषा—टाफीज़ और लेमन-ड्रप्स भी।

प्रमोद—मुँह मीठा करने के लिए। बहुत अच्छा। (प्रस्थान)

(उषा क्लाक की ओर ध्यान से देखती है। फिर मोज़ा बुनती है पर मन नहीं लगता। एक किताब उठा कर पढ़ना चाहती है। उसे भी छोड़ देती है। अखबार उठाती है पढ़ती है। चौंक कर—)

अच्छा ? दस बालिकाओं से भरी नौका डूबी ?

सिलहट—१५ जुलाई—आज शाम को दल-सागर के समीपवर्ती हरे-भरे पहाड़ी स्थान में स्थानीय स्कूल की कुछ छात्राएँ पिकनिक के लिए गई थीं। संध्या समय जब वे दल-सागर पर नौका विहार कर रही थीं उस समय अचानक मधु-मक्खियों का एक झुण्ड उस नौका पर टूट पड़ा। लड़कियों में हलचल मच गई और इससे नौका उलट गई।

सभी लड़कियाँ जल-मग्न हो गईं। अभी तक केवल दो बाहर निकाली जा सकी हैं। मल्लाहों द्वारा उनकी खोज हो रही है।

(सोचती है) अगर मैं भी डूब जाती।

(दरवाजे पर खटखट की आवाज़)

उषा—(भौंहें सिकोड़ कर) कौन है ?

स्वर—अशोक कुमार !

उषा—(उल्लास से) अह: अशोक ! आइए !!

(अशोककुमार एम० ए० का प्रवेश चौबीस वर्ष का सुन्दर नवयुवक। वेशभूषा में सुरुचि और कला। बाल ग्लिसरीन से सँवारे हुए। स्टार्च्ड कालर और फूल की तरह बो। मर्सराइज्ड सूट। हलका रेशमी रूमाल हृदय की तरह पाकेट में रखा हुआ है। पेटेएट शू। व्यक्तित्व इतना ताजा जैसे वह अभी ही स्नान करके चला आ रहा है। क्लीन शेव। आँखों में रसिकता और ओठों में मुस्कान। हाथ में क्रेवन ए सिगरेट का डिब्बा। उसके आते ही कमरे में लेवेएडर की खुशबू फैल जाती है। आते ही उषा को देखकर—

ओः मिसेज गुप्ता ! उषा ! मिस उषा !

उषा—(उल्लास से उठकर) अशोक ! अशोक !!! कांग्रेचुलेशंस !

अशोक—(प्रसन्नता से) थैंक्स, उषा ! (हाथ मिलाते हैं) अच्छी तो हो ?

उषा—हाँ अच्छी हूँ किसी तरह। तुम तो अच्छे हो ?

(बैठते हैं)

अशोक—बहुत बहुत अच्छा। उषा ! अभी पटने से आ रहा हूँ। बिहटा गया था। ओफ़, यदि एक दिन पहले जाता तो मुमकिन था कि मेरा नाम भी दुर्घटना में सम्मिलित होता। मैंने आज वहाँ के अभागों को देखा। एक रोज पहले जाता तो लोग मुझे देखते। (सिगरेट जलाता है)

उषा—कैसी बातें करते हो अशोक ? ईश्वर न करता तुम पर आँच आती।

अशोक—तुम्हारी मंगल-कामना कहाँ जाती ? इसीसे तो बच सका। वहाँ की तो बहुत पैथेटिक साइट थी !

उषा—(विरक्त से) होगी। तो अभी ही आ रहे हो ? तुम्हारी राह बड़ी देर से देख रही थी। (घड़ी की ओर देखती है)

अशोक—ऐसी बात थी ? थैंक्स। अभी शाम की गाड़ी से आरहा हूँ। शायद कुछ लेट हो। मैंने तुम्हें लिख ही दिया था।

उषा—हाँ, मैं जानती थी कि तुम् आज शाम को आ रहे हो ; अच्छा, कुछ जलपान ? चाय, मुझे ही अपने हाथ से तैयार करनी होगी। कोई नौकर तो—

अशोक—ओः तब तो और भी स्वादिष्ट होगी। ओ. के. !

पर ठहरो, तकलीफ मत करो। गाड़ी से उतरते ही मैं फ़र्स्ट क्लास वेटिंग रूम में चला गया। मुँह धोया। फिर अच्छे से अच्छा नाश्ता करके आरहा हूँ।

उषा—तब ठीक बात है। फिर मैं आपकी आवभगत भी तो नहीं कर सकती। बहुत बड़े आदमी अशोक की। मैं तो ग़रीब हूँ। और अशोक तुम तो अब और भी बड़े आदमी बन गये, मुंसिफ़ साहब!

अशोक—(गर्व से) बड़ा कब नहीं था उषा? कॉलेज में भी बड़ा था। जार्ज टाउन में रहता था। मोटर पर रात-दिन सैर। सिनेमा पैलेस का तो पास ही मेरे पास था। इलाहाबाद जैसे सूखे शहर में भी मैं दो सौ फूँक देता था। जहाँ के लड़के फ़िलासफ़ी या स्टैटिस्टिक्स की तरह ड्राइ हैं उस इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी में भी वसन्त की बहार देखता था। उषा, और बड़ा आदमी किसे कहते हैं? (सिगरेट का धुआँ ओंठ उचकाकर छोड़ता है)।

उषा—(उल्लास से) वास्तव में तुम बड़े आदमी हो अशोक! तब भी थे और अब भी।

अशोक—और उषा! तुम कैसी हो गई हो? दुबली-पतली, न ठीक हँस सकती हो और ठीक रो भी सकती हो या नहीं? पगली लड़की—पहले तो नैशट्रेशियम की तरह खुशरङ्ग, उषा की तरह सुसज्जित, ओस की तरह निर्मल थी, और—

उषा—(दुःखी होकर) अशोक, कुछ मत कहो। अब मेरा जी मत जलाओ। मैं पानी से बाहर की हुई मछली हूँ। (आँखों में पानी)

अशोक—(सान्त्वना देते हुए) उषा, अरे तुम्हारी आँखों में पानी ? हुश ! अच्छी अच्छी उषा, मैं आया हूँ और ऐसी बात ! अच्छा प्रमोदजी कहाँ हैं ?

उषा—बाहर गये हुए हैं।

अशोक—(प्रसन्नता से) क्या इलाहाबाद से बाहर ?

उषा—नहीं शहर ही में।

अशोक—अच्छा, कब तक लौटेंगे ?

उषा—एक आध घन्टे से पहले नहीं। चौक में उन्हें कुछ काम है।

अशोक—कोई, खास ?

उषा—नहीं, यू० डी० क्लोन और वैंपेक्स लाने के लिए।

अशोक—क्यों, क्या उनकी तबियत ठीक नहीं है ?

उषा—नहीं ठीक है। मैंने ही भेजा है, मुझे जरूरत......

अशोक—क्यों तुम्हें क्या हुआ ?

उषा—कुछ नहीं (क्लाक देखकर) तुम से एकान्त में मिलना चाहती थी।

अशोक—(प्रशंसा से हाथ मिलाते हुए) ओ: उषा तुम बड़ी चतुर हो। तुम पहले भी चतुर थीं, उसी तरह जिस तरह मैं पहले भी इतना ही अच्छा था। और उषा तुम्हें याद है उस दिन आल्फ्रेड पार्क के लॉन पर तुम बैठी थीं। मैं पास ही तुम्हारी केश-राशि के खुले हुए छोर में कोमल कलियों को कैद कर रहा था। सुन्दरता को सुन्दरता से बाँध रहा था। लेडी आव् दि नाइट की सुगन्ध जैसे तुम्हारे सामने अपने को हवा में खो देना चाहती थी। यूक्लिप्टिस के पेड़ के पीछे से चाँद ने हमें देखा था और उषा उस समय ·· ·····।

उषा—कोकिल ने कहा था कुऊ! अशोक—

अशोक—क्या कहूँ उषा! तुम क्या थीं और अब क्या होगई? जैसे ओस को किसी ने फूल से उठा कर काग़ज़ पर बहा दिया। इन्द्र-धनुष को बादल में लपेट दिया! तितली के पंखों पर कीचड़ लगा दिया!!

उषा—(उद्विग्न होकर) कुछ मत कहो अशोक!

अशोक—क्यों न कहूँ उषा? मैं तो जैसे स्वप्न देख रहा हूँ। तुम्हारी प्रभा खोई देखकर मैं खुद खो गया हूँ। मेरे पिता ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया जिस प्रकार तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ। उनके रूढ़िगत होरोस्कोप के जंजाल ने तो हम दोनों का बलिदान कर दिया। आज तुम्हें पाकर मैं कितना निहाल होता! इसे तुम क्या जानो उषा? आज तुम मेरे धन

पर ही नहीं मुझ पर भी शासन करतीं तो मैं कितना धन्य होता। मैं तुम्हें पाकर कितना दुखी हूँ यह उस पेड़ से पूछो जो वसन्त आने के पहले ही काट दिया गया।

उषा—(मलान होकर) और अशोक तुम यदि मेरे हृदय को देखो तो मालूम होगा कि वह आँसुओं से बना हुआ है। मैंने कितनी ही रातें यों ही बितादी हैं, जागते हुए। जैसे किसी फूल को सुरक्षित रखने के लिए सन्दूक में बन्द कर दिया गया है। यह मेरी दशा है। क्या इसका कोई उपाय नहीं है अशोक?

अशोक—(स्वतंत्रता से) है न। मेरे साथ चलो। फिर देखा जायगा। मैंने तो तुम्हें पत्र में लिख दिया था कि आज शाम को आ रहा हूँ और रात हो देहरादून चला जाऊँगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो देहरादून चलकर कुछ दिनों रहो। फिर देखा जायगा। हम लोग स्थायी रूप से मसूरी ही रहेंगे। वहाँ तुम्हारे माता पिता—

उषा—मैंने तो आज ही संवाददाता महोदय से कह दिया है कि मैं देहरादून जाना चाहती हूँ। मेरी माँ की तबियत अच्छी नहीं है।

अशोक—(प्रसन्न होकर) अच्छी बात बनाई, माँ की तबियत अच्छी नहीं है! अब इसमें तो किसी तरह की रुकावट हो ही नहीं सकती। अच्छा तो उन्होंने क्या कहा?

उषा—उन्होंने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

अशोक—बड़े उदार हैं! तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध नहीं जाते।

उषा—हाँ, हैं तो बड़े सीधे। सदैव मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं। पर ज़रा रोमेण्टिक नहीं हैं। गंभीर हैं। जैसे सारे संसार की समस्या इन्हें ही सुलझानी है और सुनो, मैंने कह दिया कि मैं अशोक के साथ जाऊँगी।

अशोक—अच्छा? वे चौंके नहीं?

उषा—पहले तो कुछ अस्थिर हुए। बाद में मैंने पुरानी याद दिलाई कि तुम जार्ज टाउन में रहते थे। बड़े सरल और अच्छे थे। साथ ही माँ की बीमारी का ज़िक्र किया तो स्वीकृति दे दी।

अशोक—वाह बड़े सज्जन हैं। अच्छा तो फिर चल रही हो?

उषा—कब?

अशोक—आज रात। मुझे अभी जाना है। दो एक चीज़ें सत्यभामा के लिए लेनी हैं। उन्हें ख़रीद कर लौटूँगा। संवाद-दाताजी से भी मिल लेना ज़रूरी है। मैं क़रीब बीस-बाईस मिनट बाद आऊँगा। मेरे मित्र की कार है ही। कुछ देर नहीं लगेगी। तुम उनसे निश्चय कर रखना। मैं उनके सामने भी स्वीकृति ले लेना चाहता हूँ। मैं तुम्हें उनके सामने ही ले जाना चाहता हूँ। फ्राम अण्डर दि लॉफुल गार्डियनशिप। समझीं? मैं अभी लौटकर आता हूँ। फिर आज की रात हम लोगों के जीवन की मधुयामिनी होगी उषा! थैंक्स बी टु गॉड्डेस वीनस!

उषा—पर अशोक, मुझे कुछ भय लगता है।

अशोक—हुँअ् ! एक ग्रेजुएट लेडी और भय ? उषा, क्यों स्वयं अपने एज्यूकेशन को लज्जित करती हो ? शर्मीली लड़की ! (उत्साह देते हुए) उठो, चियरियो ! मेरे साथ चलो। बुरा न लगेगा। सत्यभामा के साथ रहना।

उषा—यह सत्यभामा कौन ?

अशोक—मेरे सम्बन्धी के दूर के रिश्ते की बहन। बड़ी सीधी लड़की है।

उषा—अच्छा। तो, फिर अशोक मैं तो इस जीवन से ऊब गई हूँ।

अशोक—संवाददाताजी के पास जीवन ही क्या। स्याही, कागज, कलम और अखबारों के ढेर। कागज़वालों के तकाज़े। एक जापानी घड़ी (क्लाक की ओर देखकर) दो एक टूटी टेबिल्स और मैले खद्दर का पोश। वहाँ मेरे साथ मसूरी में खुद का बंगला जिसमें बीस तो खानसामा ही हैं। मखमली गद्दे, जिन पर बैठो तो मालूम हो कि किसी की गोद में बैठी हो। रेशमी झालरें। अधखुली खिड़की से हिम-मिश्रित मार्निंग सन् की सुनहली किरणें यदि सारे शरीर को चूम लें तो बुरा न लगे। कमरे में रखे हुए सहस्त्ररंगी क्रोटन के इन्द्र-धनुष। शाम को ठंडी सड़क पर हल्के स्नो-फॉल में राबिन के जोड़ों का कोलाहल और उसी समय क्राइसलर की मन्द गति

में ड्राइव। शाम को पैलेडियम में अनेक तरह के शो और डांस। वालनट की आराम कुर्सियों पर आइस क्रीम और जिनकी उड़ती हुई मस्ती भरी महक..........।

उषा—अशोक, निश्चय ! निश्चय !

अशोक—तो फिर आज रात को चलना निश्चय रहा ?

उषा—निश्चय। मोस्ट डेफ़िनिटली, अशोक।

अशोक—तो फिर..........।

(बाहर दरवाजे पर आवाज़)

उषा—(शंकित होकर) कौन ? (अशोक उठ खड़ा होता है)

(एक सत्रह वर्षीय युवती का प्रवेश। वस्त्रों में सरलता। मुद्रा में गंभीरता। वह सौन्दर्य की साक्षात् देवी है। भौंहों के बीच में रोली की नन्हीं सी बिंदी। ओठों की मिलन रेखा से जैसे मुस्कान निकलने की चेष्टा कर रही है। अशोक को देखकर वह कुछ विचलित हो जाती है। आकर उषा को चुपचाप नमस्ते करती है)

उषा—(हँसकर) राजे, तुम हो ? आओ, ये मेरे बाल-सखा श्री अशोक कुमार गुप्ता, एम० ए०, मुंसिफ़ और (अशोक से) ये मेरी सखी राजेश्वरी देवी। मैट्रिक तक हमारे और आपके संवाददाताजी के साथ पढ़ी हैं। बड़ी सरल और मिष्टभाषिणी हैं जैसे ब्रह्मा ने इनके गले में एक कोयल बिठला दी है (उषा और अशोक अट्टहास करते हैं। राजे लज्जित होकर रह जाती है।)

अशोक—(रसिकता से) हूँ, ब्रह्मा ने इनके गले में एक कोयल बिठला दी है तब तो ये केवल वसन्त ही में बोलती होंगी ? (हास्य)

उषा—वाह, तुम तो अभी से हँसी करने लगे।

अशोक—ये बोली नहीं न ? आने की सूचना भी दी तो दरवाज़े पर आवाज़ करके। आकर नमस्ते भी की तो चुपचाप।

उषा—क्या तुम अपने जैसा वाचाल सभी को समझते हो ?

अशोक—वाणी तो बोलने के लिए ही है। गले में बन्द रखने के लिए नहीं।

उषा—राजे वाणी का काम आँखों से लेती है। इतनी लज्जाशील है।

अशोक—केवल लज्जा के समय या अन्य समय भी ? (तिरछी दृष्टि)

राजे—(कटुता से) उस समय विशेष-रूप से जब मुझे कोई बात अच्छी नहीं मालूम देती।

अशोक—(नम्रता से) ओः मुझे क्षमा कीजिए श्रीमती राजेश्वरी देवी जी। यदि मेरी बात आपको अच्छी न लगी। अच्छा, उषा जाता हूँ। बीस-पचीस मिनट बाद आऊँगा। संवाददाताजी से मिलता जाऊँगा।

उषा--अच्छी बात है। मैं तैयार रहूँगी। नमस्ते।

अशोक—(नमस्ते करते हुए) श्रीमती राजेश्वरी देवी को भी सादर नमस्ते। (राजे मौन नमस्ते करती है अशोक का प्रस्थान)

उषा—कहो राजे कैसे आईं। कोई विशेष बात ? इधर महीनों तुम्हारे दर्शन नहीं हुए ?

राजे—वहिन.........(रुक जाती है)

उषा—कहो, कहो, कैसे रुक गईं ?

राजे—(करुण स्वर) मुझ पर विशेष संकट आ पड़ा है। सहायता करोगी ?

उषा—(उत्साह से) अवश्य। कहो क्या बात है ?

राजे—मेरे पास सिलहट से सूचना आई है कि मेरी बड़ी बहिन मृत्यु शैया......।

उषा—(अस्थिर होकर) ऐं, मृत्यु-शैया पर......?

राजे—हाँ, जल में डूब गई थीं। वे.........(कुछ बोल नहीं सकती)।

उषा—ऐं, जल में डूब गई था ? हाँ, अभी मैंने समाचार-पत्र में पढ़ा कि सिलहट में दस बालिकाओं से भरी नौका दलसागर में डूब गई। कहीं उन्हीं में तो तुम्हारी बहिन नहीं थीं ?

राजे—(दुःख से) हाँ, उन्हीं में थीं। पिकनिक में गई थीं।

वे वहाँ बालिकाओं की संरक्षिका थीं। छात्राओं के साथ वे भी जल में डूब गई थीं। किसी तरह निकाली गई हैं। मृत्यु-शैया पर हैं। (साश्रु नयन)

उषा—राजे, यह सुनकर मुझे बहुत दुःख है। कहो मैं तुम्हारी सहायता कैसे कर सकती हूँ ?

राजे—मैं अपने साथ प्रमोदजी को ले जाना चाहती हूँ। मैं उन्हीं के साथ सिलहट जाऊँगी।

उषा—अकेली ?

राजे—हाँ, अकेली। मैं उन्हें अपना भाई मानती हूँ।

उषा—(उद्भ्रान्त हो अस्फुट शब्दों में) भाई..........

राजे—(दृढ़ता से) हाँ भाई। वे मेरे प्रमोद भाई हैं मैं उन्हीं के साथ जाऊँगी और मेरे साथ कौन है जो जावे ? वृद्ध पितामह आ जा ही नहीं सकते। भाई बहुत छोटा है। पिता की पारसाल मृत्यु ही हो गई।

उषा—(विदग्ध होकर) भाई मानती हो ? (सम्हलकर) पर उन्हें तो अवकाश ही नहीं है।

राजे—मैं जानती हूँ, पर वे बहुत उदार हैं। उन्होंने मुझ पर अनेक उपकार किये हैं। ऐसे व्यक्ति संसार में बड़ी कठिनता से मिल सकेंगे।

उषा—सचमुच ?

राजे—(प्रशंसा के स्वर में) वे धनी नहीं तो क्या हुआ, वे हृदय के धनी हैं। हृदय को पहचानते हैं और सच्चे मनुष्य हैं, धन से और रुतबे से कोई आदमी बड़ा नहीं होता। आदमी बड़ा होता है अपने हृदय से। वे तेजस्वी हैं, मनस्वी हैं, उदार हैं।

उषा—(विवशता से) मेरे लिए तो केवल संवाददाता हैं।

राजे—तुम यदि उनका संवाद न समझो तो इस में उनका क्या दोष ? उनका मनुष्यत्व का संवाद है। वे दूसरे के लिए अपना सब कुछ दे सकते हैं। मेरे पास इसके अनेक प्रमाण हैं।

उषा—(जिज्ञासा की दृष्टि से) प्रमाण ?

राजे—चार वर्ष बीत गये। एक बार जब मैं साइकिल पर बाजार जा रही थी उस समय एक इक्केवाले की लापरवाही से मेरी साइकिल इक्के से लड़ गई और मुझे सिर में गहरी चोट लगी। उस समय प्रमोदजी वहाँ एक भिखारी का खोया हुआ पैसा खोज रहे थे। उन्होंने मुझे देखते ही मेरी साइकिल के टेढ़े हैण्डिल को सीधा किया और मेरे सिर की चोट को अपने रेशमी रूमाल से बाँध दिया। साइकिल तो मेरे घर पहुँचा दी और मुझे अस्पताल ले जाकर मेरे घाव की ड्रेसिंग कराकर बड़ी सहायता की। मेरे सिर में बाँधा हुआ वह उनका रूमाल आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

उषा—(किंचित व्यंग्य से) स्मृति-स्वरूप ?

राजे—जो समझो। मैं उन्हें भूल नहीं सकती। वे भूलने

योग्य भी तो नहीं हैं। मैं उन्हें भुला नहीं सकी।

उषा—और वे तुम्हें भूल सके ?

राजे—(गहरा साँस लेकर) वे तो मुझ से आज तक नहीं मिले। मैं कुछ महीनों पहले तुम्हारे पास आई थी, विशेषकर उन्हीं के दर्शन करने के लिए। पर उस समय वे कहीं बाहर गये हुए थे। शायद बिहार में नदियों की बाढ़ से पीड़ित किसानों की रक्षा करने के लिए। कितने उदार हैं वे। जब मुझे सिर में चोट लगी थी तभी उनके दर्शन हुए थे। इस घटना को हुए चार वर्ष बीत गये। तब से उनसे बातें ही नहीं हुईं। काश मुझे फिर कहीं चोट लग जाती !

उषा–(व्यंग्य से) हृदय में ?

राजे—(उत्तेजित होकर) हँसी मत करो बहन। वे कितने बड़े हैं यह तुम अभी तक नहीं जान सकीं। मैं किस श्रद्धा से उनकी पूजा करती हूँ यह तुम क्या जानो। वे कितने महान् हैं ····न जाने उन्होंने कितनों पर ऐसे उपकार किये होंगे ? मेरी याद उन्हें क्या होगी ? इसीलिए डर रही हूँ कि वे मुझे पहचानेंगे या नहीं। यों तो मैं उनके साथ कुछ दिनों पढ़ी हूँ, पर कभी उन्होंने मुझसे पहचान करने की कोशिश नहीं की। मैं अपना परिचय देने के लिए उनका वही रूमाल लाई हूँ जो उन्होंने मेरे सिर में बाँधा था। इसीसे चाहें वे मुझे पहिचानें। देखो वह यह है।

उषा—(हाथ में लेकर बड़ी सावधानी से) ओहो, बड़ी सावधानी से सुरक्षित है, यह इस कोने में लिखा है 'पी'। राजे यदि इसे मैं फाड़ डालूँ ?

राजे—(घबड़ा कर) नहीं उषा, उसे मत फाड़ना। मेरा जीवन फट जायगा। मैं मर जाऊँगी।

उषा—(मुस्कराकर) घबड़ा गई ? बड़ी भारी निधि है! जीवन फट जायगा! रेशम का छोटा-सा टुकड़ा!! यह लो! (लापरवाही से देती है)

राजे—(रूमाल लेकर तह करते हुए) रेशम का टुकड़ा ही सही पर यह उनकी महत्ता और उपकार का जीवन-पर्यन्त उदाहरण है। इसे तुम क्या समझो उषा ?

उषा—इसीलिए शायद अभी तक अविवाहित हो !

राजे,—उषा इस समय मैं तुम्हारा परिहास सुनने नहीं आई हूँ। मैं इस समय संकट में हूँ तुम्हारी सहायता चाहने आई हूँ।

उषा—(जैसे उसकी विपत्ति का स्मरण कर) अह क्षमा करना राजे! मैं बिलकुल भूल गई। मैं जानती हूँ मेरा स्वभाव बहुत ही उच्छृंखल हो रहा है। इससे मुझे छुटकारा नहीं। राजे, क्षमा करना।

राजे—अच्छा बहिन, मैं कल ही सिलहट जा रही हूँ। यदि तुम भी उनसे कहोगी तो वे अवश्य मेरे साथ चले चलेंगे। किसी की बीमारी या किसी की विपत्ति सुन कर वे सब कुछ कर सकते हैं। मैं तो यह विश्वास-पूर्वक कह भी नहीं सकती कि उनको मेरा स्मरण होगा। मैंने जब प्रयत्न किया कि उनके दर्शन करूँ तब से किसी न किसी कार्य से बाहर चले जाते थे। उदार होकर भी चरित्रवान् ! उषा ऐसे व्यक्ति संसार में कितने हैं ? उदार, चरित्रवान्, किसी के संकट में वे सब कुछ कर सकते हैं।

उषा—हाँ, इसका प्रमाण मेरे पास भी है कि मेरी माँ की बीमारी सुन कर उन्होंने मुझे जाने की आज्ञा बड़ी आसानी से दे दी।

राज़े—(चौंक कर) तो क्या तुम्हारी माँ बीमार हैं ?

उषा—(कुछ उत्तर नहीं देती)

राजे—तो फिर बहिन, मैं उनसे चलने का अनुरोध न करूँगी। वे इस समय कहाँ हैं ? काम कर रहे हैं ?

उषा—नहीं बाहर गये हैं, चौंक।

राजे—फिर भी बाहर से कब तक लौट आवेंगे ?

उषा—यही घण्टे, आध घण्टे में।

राजे—क्या तुम अपनी माता जी के पास जा रही हो ?

उषा—हाँ, सोच रही हूँ।

राजे—तो फिर बहिन, वे भी तुम्हारे साथ जावेंगे। तुमने चलने के लिए उनसे कहा था ?

उषा—कहा तो था पर बाद में मैंने कहा मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी।

राजे—किस अशोक के साथ ?

उषा—इन्हीं अशोक के साथ जो अभी यहाँ बैठे थे ? इतनी जल्दी भूल गई ?

राजे—ये अशोक ! बहन, इनके साथ मत जाना। क्षमा करना। इनकी आँखों में जैसे पिशाच नाच रहा था। क्या तुम इन पर विश्वास कर सकती हो ? मैं तो इनकी दृष्टि से ही भयभीत हो गई थी। एक बात भी नहीं कर सकी।

उषा—मैं अशोक को जानती हूँ। वे हमारे बालसखा हैं। हमारे साथ के पढ़े हुए हैं।

राजे—जो हो, तुम जानो। पर मैं तो ऐसे व्यक्ति पर कभी विश्वास नहीं कर सकती। क्षमा करना यह आलोचना। अच्छा तो मैं अब जाती हूँ।

उषा—उनसे तो मिलती जाओ।

राजे—नहीं, यदि मैं उनसे मिली तो वे मेरे साथ चलना

अधिक उचित समझेंगे। मैं तुम्हारी माँ की बीमारी में उन्हें तुम से दूर नहीं हटाना चाहती। उन्हें तुम अपने साथ लेती जाओ। माँ की बीमारी में अनेक प्रकार से सहायक होंगे। तुम उनसे मेरा नमस्ते कह देना।

उषा—ठहरो आते ही होंगे। (बाहर से शब्द) वे आये।

(बाहर से शब्द) - पोस्टमैन

उषा - अरे पोस्टमैन है (कुछ जोर से) अन्दर आओ।

पोस्टमैन—(अन्दर आकर) यह डाक है। (अख़बारों का बड़ा सा पुलिन्दा देता है) और यह प्रमोद बाबू के नाम एक रजिस्ट्री चिट्ठी। (उषा दस्तख़त करके रजिस्ट्री चिट्ठी लेती है। उसे खोलकर पढ़ती है। पोस्टमैन चला जाता है)

राजे—कोई जरूरी पत्र है ?

उषा—हाँ, मोतीहारी से पत्र आया है कि इन्होंने विहार के बाढ़-पीड़ितों को मृत्यु के मुख से बचाया था। इसलिए वहाँ के नागरिक इन्हें मान-पत्र देना चाहते हैं, ७ अगस्त को।

राजे—ओः ये कितने महान् हैं !

उषा—(सोचती रह जाती है)

राजे—अच्छा बहिन, अब जाऊँगी। मान-पत्र तो इन्हें

७ तारीख को मिलेगा, आज तो १६ जुलाई ही है तब तक तुम इन्हें अपने साथ ले जा सकती हो। ये तुम्हारे बड़े सहायक होंगे।

उषा—ठहरो न कुछ देर ? वे आते ही होंगे।

राजे—नहीं अब मैं जाऊँगी। मैं अकेली ही चली जाऊँगी।

[प्रस्थान

(उषा थोड़ी देर तक सोचती रहती है। फिर प्रमोद की फ़ोटो के समीप जाकर चित्र की ओर देख कर स्वगत कहती है।) क्या वे इतने महान् हैं ! वास्तव में इतने महान् हैं ! राजे कहती है, उपकार करने पर भी विस्मरण ! उदार होकर भी चरित्रवान् ! यदि तुम इनका संवाद न समझो तो इसमें इनका क्या दोष ? इनका संवाद मनुष्यत्व का संवाद है। संवाद-दाता .... मेरे.........!)

(प्रमोद का प्रवेश। वह थका हुआ है। रूमाल से पसीना पोंछता है।) उषा, तीन जगह भटकने पर तुम्हारी दवाइयाँ मिलीं। इसी से इतनी देर हुई। सबसे पहिले लो ये टाफीज़ यह लो यू० डी० क्लोन और वैपेक्स।

उषा—(कृतज्ञता से) धन्यवाद ! अभी राजे आई थी—

प्रमोद—कौन राजे ?

उषा—राजेश्वरी देवी।

शीघ्र ही चार्ज लेना है। और फिर एक बात है उषा की माँ की तबियत खराब है। यह तो तुमने सुना ही होगा।

प्रमोद—हाँ, उषा ने कहा तो था।

अशोक—तो उषा भी जाना चाहती है; तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है ?

प्रमोद—मुझे कोई आपत्ति नहीं है। उषा की माँ की तबियत खराब हो और उषा के भेजने में आपत्ति ! कैसी बातें करते हो ? फिर तुम्हारे साथ ? मेरे परिचित-मित्र-सहपाठी-कब जा रहे हो ?

अशोक—आज अभी रात की गाडी से।

प्रमोद—अभी तो उनकी कोई तैयारी नहीं।

अशोक—भई वाह, माँ को देखने जाने में किस तैयारी की जरूरत ?

प्रमोद—तो भी भाई कुछ कपड़े-वपड़े—

अशोक तो फिर बस इतना ही वक्त है।

प्रमोद—भाई चाय तो पीते जाओ।

अशोक—भाई फॉरमैलिटी में मत पड़ो। ट्रेन टाइम है सेवन थरटीन, मुझे वहाँ पौने सात बजे पहुँच जाना चाहिए। उषा को तैयार होने को कह दो। और यह लो अपने चार

दस्ते काग़ज़। जरा लोग समझें तो कि हम लोग कितने फ्रेंडली हैं।

प्रमोद—बिना प्रेजेन्ट के ही लोग हम लोगों को फ्रेंडली समझते हैं। पर तुम्हारी प्रेजेन्ट मैं लूँगा। इसकी कीमत मेरी नजरों में स्वर्ण पत्र के बराबर है। (अशोक मुस्कराता है)

अच्छा उषा तैयार हो जाओ। अशोक के साथ जाओ। अच्छी तरह से रहना। अपने माता-पिता से मेरा प्रणाम कहना। शीघ्र ही आने की कोशिश करूँगा······

अशोक—(बीच ही में) मैं तो वहाँ हूँ। तुम्हारे कष्ट करने की आवश्यकता क्या है प्रमोद ? मेरे रहते किसी तरह की तकलीफ़ हो, कैसी बातें करते हो, तुम हुए या मैं हुआ ? इट् इज आल दि सेम।

प्रमोद—पर तुम तो चार दिन बाद चले जाओगे अपनी मुंसिफ़ी पर।

अशोक—मैं सब इन्तजाम कर जाऊँगा। डॉक्टर्स, नर्सेज़, कम्पाउण्डर्स, सब को मैं उँगलियों पर नचाता हूँ। वह तो मुझे अकस्मात तार मिला कि उषा की माँ की तबियत खराब है। यही कारण है कि मैं देहरादून जा रहा हूँ माता-पिता से मिलना तो फॉरमैलिटी की बात नहीं है। तो उषा तुम तैयार हो जाओ चलने के लिए।

(उषा चुप रहती है)

अशोक—उषा हम लोगों के पास समय नहीं है। तुम तैयार हो जाओ चलने के लिए—

उषा—(दृढ़ता से) नहीं।

अशोक—(आश्चर्य से) नहीं।

उषा—नहीं, अशोक तुम अकेले जा सकते हो। मैं न जा सकूँगी।

अशोक—अरे तुम्हें क्या हो गया? माँ की तबियत खराब है और तुम नहीं जाओगी?

उषा—मैं जानती हूँ माँ की तबियत खराब नहीं है। मैं नहीं जाऊँगी।

प्रमोद—जाओ न उषा, अभी तो तुमने कहा था कि माँ की तबियत ठीक नहीं है।

अशोक—(उसी स्वर से) ठीक नहीं है।

उषा—तुम तो पटने से आरहे हो तुम्हें क्या पता माताजी की तबियत कैसी है?

अशोक—मुझे तार मिला था।

उषा—झूठ भी बोलते हो अशोक? मेरी माँ की तबियत अब ठीक है। मैं नहीं जाऊँगी।

अशोक—उषा पागल हो गई हो क्या? संवाददाताजी, अपनी 'राष्ट्रवाणी' में प्रकाशित करा दीजिए कि उषा पागल हो गई।

उषा—(क्रोध से) आप उन्हें संवाददाता कह कर मजाक न उड़ाइए। आप उन्हें क्या समझें, वे क्या हैं ?

अशोक—'राष्ट्रवाणी' के संवाददाता—

उषा—चुप रहो अशोक ! तुम अकेले जा सकते हो।

अशोक—तो क्या मैं अकेला ही जाऊँ ? तुम्हारी हीरे की अँगूठी—

उषा—उसे तुम अपने ही पास रक्खो ! कभी काम देगी।

अशोक—तो मैं अकेले ......

उषा—बिल्कुल अकेले जाओ अशोक। अब मैं तुम से बात नहीं करना चाहती। नमस्ते।

अशोक—मालूम होता है, उषा ने भाँग पीली।

प्रमोद—(आश्चर्य से) मैं स्वयं नहीं समझ रहा हूँ कि यह क्या बात है।

अशोक—जाने दो प्रमोद। आजकल की स्त्रियों पर क्या एतबार ! कभी टेनिस खेलकर लव गेम खाती हैं, कभी प्रोसेशन में जाकर महात्मा गान्धीजी की जय बोलती हैं। हवा का

रुख है, चाहे जिधर वह गया। फ़ीमेल माइण्ड इज़ ए मिस्ट्री सर! अच्छा तो फिर मैं जाता हूँ; जरा जल्दी में हूँ। अभी जाकर उषा को तुम छेड़ना मत। नशे में होगी न जाने क्या-क्या कह दे।

प्रमोद--नहीं, वास्तव में उषा का यह व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा। खैर जब वह नहीं जा रही है तो तुम मेरा प्रणाम उषा के माता-पिता से कह देना और माताजी के स्वास्थ्य की सूचना शीघ्र ही देना।

अशोक—अवश्य, माँ की तबियत खराब जरूर है। उषा ने स्वयं मुझसे कहा था। अब बिलकुल उलटी बात कहती है।

प्रमोद—(अव्यवस्थित होकर) हाँ, मुझसे भी जब वे देहरादून जाने की बात कर रही थीं तो उन्होंने अपनी माताजी के बीमार होने के विषय में कहा था।

अशोक—खैर जाने दो, जब दिमाग़ कुछ शान्त हो जाय तब कुछ पूछना। अभी तो आराम करने दो। अच्छा भाई, तो मैं अब जाता हूँ।

प्रमोद—अच्छा तो स्वास्थ्य-समाचार लेने के लिए मैं शीघ्र आऊँगा।

अशोक—जरूर आना। आने की तारीख लिखोगे तो मैं स्टेशन पर आ जाऊँगा। अच्छा गुड बाई। [प्रस्थान

प्रमोद—(सोचते हुए) उषा में यह कैसी अशिष्टता ! (पुकार कर) उषा ! (उषा का प्रवेश साधारण वस्त्रों में)

उषा—कहिए, आज्ञा ।

प्रमोद—(आश्चर्य से) अरे उषा, यह क्या ? एं, तुम्हें यह हो क्या गया है ?

उषा -(सरलता से) कुछ नहीं । यह साधारण साड़ी मुझे अब बड़ी अच्छी लगने लगी है ।

प्रमोद—क्या तुमने कोई नशा किया है ?

उषा—नहीं, अब नशा उतर गया है ।

प्रमोद—मैं तो कुछ समझता ही नहीं ! आज का तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं रहा अशोक के साथ !

उषा—मैंने उचित ही व्यवहार किया । यदि भूल हुई हो तो क्षमा चाहती हूँ । (हाथ जोड़ती है)

प्रमोद—उषा, क्षमा चाहती हो मुझ से ? मैंने तो आज तक यह शब्द तुमसे सुना ही नहीं । व्यंग्य मत करो ।

उषा—ओह, मैं तुम पर व्यंग्य करूँगी ? तुम कितने महान् हो, मैं अभी तक यह नहीं समझ सकी । मैंने माँ के विषय में जो झूठ बात कही थी उसकी भी क्षमा दो । तुम उदार हो, महान् हो ,चरित्रवान हो, मैं तुम्हें पाकर ......

प्रमोद—(हँसते हुए) कितनी दुःखी हो ! अच्छा उषा, दुःखी ही रहो पर ये अपनी दवाइयाँ तो लो ।

उषा—(दवाओं को फेंक कर) अब मुझे इनकी आवश्यकता नहीं । विना दवा के ही मैं अच्छी हो गई हूँ ।

प्रमोद—(आश्चर्य से) विना दवा के ? मैं समझ नहीं रहा हूँ उषा, यह तुम क्या कह रही हो । यह तुममें इतना शीघ्र आकस्मिक परिवर्तन !

उषा—इतने शीघ्र ! कहिए कितनी देर में परिवर्तन । आह, राजे—

प्रमोद—राजे ? यह क्या कह रही हो ?

उषा—कुछ नहीं मेरी एक प्रार्थना मानोगे ?

प्रमोद—(प्रसन्नता से) कैसी प्रार्थना ?

उषा—केवल एक प्राथना !

प्रमोद—कौनसी ?

उषा—राजेश्वी देवी के साथ उनकी बहिन की रक्षा करने के लिए सिलहट चलो । मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी ।

प्रमोद—कैसी बहिन ?

उषा—उनकी बहिन कुमुद पानी में डूब गई थीं। किसी तरह से वे बचाई जा सकी हैं। इस समय उनकी परिचर्या की आवश्यकता है। वे मृत्यु-शैया पर हैं। यह देखो समाचार—(समाचार-पत्र देती है) यह पढ़ा कि नहीं ?

प्रमोद—(समाचार पढ़कर चिन्ता से) आह, इनमें तुम्हारी सखी की बहिन है ? तब तो मैं जरूर जाऊँगा। तुम भी चल सको तो चलो। आह बेचारी कुमुद !

उषा—तो राजे के पास जाओ। उसे सूचित करदो कि हम दोनों भी साथ चल रहे हैं। शीघ्र जाओ, नहीं तो सम्भव है वह अकेली ही चल दे। उसके मकान का नम्बर है ११, वैलिंगडन रोड। तब तक कहो तो मैं तुम्हारा संवाद पूरा करदूँ—

प्रमोद—मेरा संवाद तुम पूरा करोगी उषा ! मैं आने पर पूरा कर लूँगा। कष्ट मत करो।

उषा—अच्छा और यह लो तुम्हार मानपत्र का एक पत्र आया है। (पत्र देती है)

प्रमोद—मुझे इस समय मानपत्र का ध्यान नहीं है। इस

समय तो राजे की बहिन.........अच्छा तो मैं जाता हूँ। (शीघ्रता से जाता है)

(उषा संवाद को देखते हुए टेबिल पर बैठ जाती है और ज़ोर से पढ़ती है—)

आहत-स्त्री पुरुषों का लोमहर्षण चीत्कार !

बिहटा । १८ जुलाई—अभी तक की ट्रेन-दुर्घटनाओं में सबसे भयानक वह है जो पटना के समीप बिहटा नामक स्थान में १७ वीं तारीख़ की रात्रि को घटी। पंजाब-हवड़ा एक्सप्रेस जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई। तीन सौ यात्री घायल हुए। सौ की तो मृत्यु ही हो गई। ऐंजिन रास्ते से टेढ़ा होकर नीचे गिर पड़ा जैसे कोई दैत्य ठोकर खाकर बैठ गया हो। चार-पाँच डिब्बे चूर-चूर हो गये। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। कोई-कोई यात्री अंग-विहीन हो गये। एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गये उसकी नव-विवाहिता पत्नी को भी चोट लगी, किन्तु वह साधारण है। पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह शारीरिक चोट से कितनी भयानक है...........................।

उषा—(ऊपर दृष्टि कर करुणा-व्यंजक शब्दों में कहती है) और मुझे जो मानसिक चोट लगी है वह उसकी शारीरिक चोट से कितनी भयानक है। (परदा गिरता है)

लक्ष्मी का स्वागत

परिचय

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क़ कहानी लेखक, कवि एवं नाटककार के रूप में कई वर्षों से हिन्दी की सेवा कर यश-भागी हो चुके हैं। 'लक्ष्मी का स्वागत' आपके प्रसिद्ध एकांकी नाटकों में से है, जिसमें मानवहृदय का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। यह दुःखान्त नाटक निश्चय ही अपनी एक गहरी छाप पाठक पर छोड़ जाता है और अपनी कमज़ोरियों पर हमें रुला जाता है।

पात्र

रोशन—एक शिक्षित युवक।
सुरेन्द्र—उसका मित्र।
भाषी—उसका छोटा भाई।
पिता—रोशन का बाप।
माँ—रोशन की माता।
अरुण—रोशन का बीमार बच्चा।

नाटक

(स्थान—ज़िला जालन्धर के इलाक़े में मध्यम श्रेणी के
एक मकान का दालान

समय—नौ-दस बजे सुबह

दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है; मेज़ पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं।

दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है, बायें कोने में एक दरवाज़ा है जो सीढ़ियों में खुलता है।

दाईं दीवार में एक दरवाज़ा है जो कमरे में खुलता है, जहाँ इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तस्वीरें कीलों से जड़ी हुई हैं। छत पर काग़ज़ का एक पुराना फ़ानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की में से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है।

हवा की साँय-साँय और मेह के थपेड़े सुनाई देते हैं। कुछ क्षण बाद खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

दाईं ओर के कमरे में रौशनलाल दाख़िल होता है।)

रौशन०—(दरवाजे को धीरे से बन्द करके) डाक्टर अभी नहीं आया? सुरेन्द्र०—नहीं।

रौशन—वर्षा हो रही है।

सुरेन्द्र—मूसलाधार! इन्द्र का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ।

रौशन—शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र—हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रौशन—भाषी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द्र—हाँ, पहुँच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले ! बाजारों में घुटनों तक से कम पानी न होगा।

रौशन—लेकिन अब तक उन्हें आ जाना चाहिए था। (स्वयं बढ़कर, खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दे को छोड़कर वापस आ जाता है) अरुण की तबीयत गिर रही है।

सुरेन्द्र—(चुप)

रौशन—उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, गला जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आँखें खुली हैं पर वह कुछ कह नहीं सकता, बेहोश-सा असहाय-सा चुपचाप बिटर-बिटर ताक रहा है। आँखें लाल और शरीर गर्म है। सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। क्या होने को है, सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र—हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जायगा। देखो, दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी है।

(दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की साँय-साँय)

रौशन—नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र—(सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी। (रौशन बढ़कर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है)

रौशन—सामने के मकान का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है।

(बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फ़ानूस को देख रहा है।

—सुरेन्द्र, यह मामूली बुख़ार नहीं, यह गले की तकलीफ़ साधारण नहीं, मेरा तो दिल डर रहा है, कहीं अपनी माँ की तरह अरुण भी तो धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट होरहा है ?

(हवा की साँय-साँय और मेंह के थपेड़े)

—यह वर्षा, यह आँधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, यह मौत की आवाज़ें....

(बिजली ज़ोर से कड़क उठती है। दरवाज़ा ज़रा-सा खुलता है। माँ झाँकती है)

माँ—रौशी दरवाज़ा खोलो। आओ, देखो शायद डाक्टर आया है।

(दरवाज़ा बंद करके चली आती है)

रौशन—सुरेन्द्र ...

(सुरेन्द्र तेजी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भाभी प्रवेश करते हैं। भाभी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है)

डाक्टर—क्या हाल है बच्चे का ?

(बरसाती उतार कर खूँटा पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है)

रौशन—आपको भाषी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और साँस में तकलीफ़ हो गई और आज तो वह बेहोश-सा पड़ा है, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने का भरसक प्रयास कर रहा हो।

डाक्टर—चलो, चलकर देता हूँ।

(सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाज़े के खटखटाने की आवाज आती है। माँ तेजी से प्रवेश करती है)

माँ—भाषी! भाषी!

(बीमार के कमरे में भाषी आता है)

माँ—देखो भाषी, बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है। (आँखों में चमक आ जाती है) मेरा तो खयाल है, वही लोग आये हैं। मैंने रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिए और बरसातियाँ पहने........

भाषी—वही कौन ?

माँ—वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, 'सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी····

सुरेन्द्र—भाषी कहाँ है ?

माँ—बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

(सुरेन्द्र फिर तेजी से बाहर चला जाता है।)

(माँ एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में घूमती है। भाषी दाखिल होता है)

माँ—कौन हैं ?

भाषी—शायद वही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास। तुम चलो।

माँ—क्यों ?

भाषी—उनके साथ एक स्त्री भी है।

(माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा जरा-सा खोलकर देखता है और आवाज देता है—)

सुरेन्द्र—भाषी !

भाषी—हाँ !

सुरेन्द्र—इधर आओ।

(भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए खामोशी। केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर, कमरे में फ़ानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी आते हैं)

रौशन—डाक्टर साहब, अब बताइए।

डाक्टर—(अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन—बहुत नाजुक है ?

डाक्टर—हाँ !

रौशन—कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर—परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं लेकिन आपने बहुत देर कर दी है। खन्नाक* (Diphtheria) में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन—हमें मालूम ही नहीं हुआ डाक्टर साहब, कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार में हैं—उन्होंने गले में आयरन-ग्लीसरीन पेंट कर दी और फीवर-मिक्सचर बना दिया, बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से भी खराब हो गई। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नहीं तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे पर मैं उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झड़ी लग गई। (ज़रा काँपता है)

—ओले, आँधी और तूफ़ान ! ऐसी प्रलयकारी वर्षा तो कभी न देखी थी।

(बाहर की हवा साँय-साँय सुनाई देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक नज़रों से उसकी ओर ताक रहा है, सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर ज़ोर-ज़ोर से हिलते फानूस को देख रहा है)

---

*Diphtheria—गले का संक्रामक रोग जिसमें साँस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

डाक्टर—(सिर उठाता है) मैंने इञ्जेक्शन दे दिया। भाषी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं वचाव के तौर पर इञ्जेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और मेरा ख़याल ठीक निकला। भाषी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुसखा लिख देता हूँ, यहीं वाजार से दवाई वनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के वाद हलक़ में दवा की दोचार बूँदें टपकाते रहना और एक घण्टे में मुझे सूचित करना। यदि एक घण्टे तक ठीक रहा तो मैं एक इञ्जेक्शन और कर जाऊँगा। इञ्जेक्शन के सिवा डिप्थीरिया का दूसरा इलाज नहीं।

रौशन—डाक्टर साहव (आवाज भर आती है)

डाक्टर—घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद।

रौशन—मैं अपनी तरफ़ से कोई कसर न उठा रखूँगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना ; देखो जाना नहीं, यह घर इस वच्चे के लिए वीराना है। यह लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसेरोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं, सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र—तुम क्या कह रहे हो रौशन ? उन्हें क्या यह प्रिय नहीं ? मूल से व्याज प्यारा होता है।

डाक्टर—क्या कह रहे हो रौशनलाल ?

रौशन—आप नहीं जानते डाक्टर साहब ! यह सब लोग हृदय-हीन हैं, आपको मालूम नहीं इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये लोग दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे ;

सुरेन्द्र—यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई।

रौशन—दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है उससे नफ़रत करता हूँ। यह वे लोग नहीं समझते कि वह जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी माता-पिता के लाड़ में पली होती है, फिर उसके मरते ही सगाइयाँ लेकर दौड़ते हैं, स्मृति-मात्र से मेरा खून उबलने लगता है।

डाक्टर—(चौंककर) देर हो रही है, मैं दवा भेजता हूँ। (भाषी से —भाषी !

(डाक्टर साहब और भाषी का प्रस्थान)

रौशन—सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़कर चला जायगा। मैं तो इसका मुँह देखकर सन्तोष किये हुए था। उस जैसी सूरत, उसी जैसी भोली-भाली आँखें उसी जैसे मुस्कराते ओंठ उसी जैसा सीधा सरल स्वभाव। मैं इसे देखकर सरला का ग़म भूल चुका था, लेकिन अब अब ···

(हाथों से चेहरा छिपा लेता है)

सुरेन्द्र—(उसे ढकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मरते हुओं को बचा दे, मृतकों को जीवन प्रदान कर दे !

रौशन -(भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा। उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर, कठिन और निर्दयी ! उसका काम सताये हुओं को और सताना है, जले हुए को और जलाना है। अपने इस जीवन में हमने किसको सताया, किसको दुःख दिया, जो हम पर ये बिजलियाँ गिराई गईं, हमें इतना दुःख दिया गया !

सुरेन्द्र—दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाषी अभी क्यों नहीं आया ?

(उसे दरवाजे के अन्दर ढकेलकर मुड़ता है। दाईं ओर के दरवाजे से माँ दाख़िल होती है)

माँ—किधर चले ?

सुरेन्द्र—जरा भाषी को देखने जा रहा था।

माँ—क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र· उसकी हालत ख़राब हो रही हैं।

माँ—हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया। ये डाक्टर जो न करें थोड़ा है। बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी,

अच्छी-भली हकीम की दवा हो रही थी, आराम आ रहा था, जिगर का बुखार ही तो था, दो-दो वर्ष भी रहता है; पर यह डाक्टर को लाये बिना न माना। डाक्टरों को आजकल दिक़ के बिना कुछ सूझता ही नहीं। जरा बुखार पुराना हुआ, जरा खाँसी आई कि दिक़ का फ़तवा दे देते हैं। 'मुझे दिक़ हो गया है!'—यह सुनकर मरीज की आधी जान तो पहले ही निकल जाती है। हमने तो भाई इसलिए कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र—डिप्थीरिया !

माँ—वह क्या होता हे ?

सुरेन्द्र—बड़ी खतरनाक बीमारी है माँजी ! अच्छा-भला आदमी दो-चार दिन के अन्दर खत्म हो जाता है !

माँ—(काँपकर) रात-राम, तुम लोगों ने क्या कुछ का कुछ बना डाला ! उसे जरा ज्वर हो गया, छाती जम गई, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र—नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा ?

(चलने को उद्यत होता है)

माँ—सुनो !

(सुरेन्द्र रुक जाता है)

माँ—मैं तुमसे बात करने आई थी, तुम उसके मित्र हो, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र—कहिए ?

माँ—आज वह फिर आये हैं।

सुरेन्द्र—वे कौन ?

माँ—सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उसी दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र—माँजी....

माँ—तुम जानते हो बच्चा, दुनिया जहान का यह क़ायदा ही है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप ही को देख लो, अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफ़ा भी न निचोड़ा था कि नकोदरवालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद विवाह भी हो गया। और अब तो सुनते हैं, एक बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र—माँजी, रामप्रताप और रोशन में कुछ अन्तर है।

माँ—यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है, और यह पढ़-लिखकर माँ-बाप की अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गई तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ बातें बनाएँगे, सौ-सौ लांछन लगाएँगे और फिर ऐसा कौन क्वाँरा है—

सुरेन्द्र—तुम्हारा रौशन बिन-व्याहा नहीं रहेगा, इसका मैं यक़ीन दिलाता हूँ।

माँ—यह ठीक है, पर अब यह शरीफ आदमी मिलते हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी हैं, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है; और सबसे बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े भले हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीकेवाली है कि क्या कहूँ। बोलती है तो फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह स्वयं कैसे न अच्छी होगी?

सुरेन्द्र—माँजी, अरुण की तबियत बहुत खराब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ—बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आये हैं। इस आँधी और तूफान में कैसे उन्हें निराश लौटा दूँ?

सुरेन्द्र—तो आख़िर आप मुझसे क्या चाहती हैं?

माँ—तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि ज़रा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो पूछते हों, उन्हें बता दे, इतने समय मैं लड़के के पास बैठती हूँ

सुरेन्द्र—मुझसे यह नहीं हो सकता माजी, बच्चे की हालत ठीक नहीं; बल्कि शोचनीय है और आप जानती हैं वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे में केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आँखों में बिठाये रखता है, स्वयं उसका मुँह-हाथ धुलाता है, स्वयं नहलाता है, स्वयं कपड़े पहनाता है और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नहीं, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ ?

(बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन दाखिल होता है। बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटीसी)

रौशन—सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो ? परमात्मा के लिए जल्दी जाओ ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भाषी आया क्यों नहीं ? अरुण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे डूब रहा है ।

(सुरेन्द्र एक बार खिड़की से बाहर देखता और फिर तेजी से भाग जाता है। मा रौशन के समीप जाती है)

माँ—क्या बात हैं, घबराये क्यों हो ?

रौशन—माँ, उसे डिपूथीरिया हो गया है।

माँ— सुरेन्द्र ने बताया हैं। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल मिलाकर—

रौशन—क्या कह रही हो ? तुम्हें अगर स्वयं कुछ मालूम नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो।

माँ—चलो, मैं चलकर देखती हूँ

(बढ़ती है)

रौशन—(रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ़ है, उसे साँस मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-वुट्टी की बात करोगी। तुम यहीं रहो, मैं उसे बचाने की अन्तिम कोशिश करूँगा।

(जाना चाहता है)

माँ—सुनो।

(रौशन मुड़ता है। माँ असमंजस में है।)

रौशन—कहो!

माँ—(चुप)

रौशन—जल्दी-जल्दी कहो, मुझे जाना है।

माँ—वे फिर आये हैं।

रौशन—वे कौन?

माँ—वही सियालकोटवाले!

रौशन—(क्रोध से) उनसे कहो, जिस तरह आये हैं, वैसे ही चले जायँ।

(जाना चाहता है)

माँ—रौशी!

रौशन—मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप! क्या आप मेरी सूरत नहीं देखतीं, क्या आपको इस पर कुछ लिखा

दिखाई नहीं देता? शादी शादी! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है! घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है। आखिर तुम लोगों को हो क्या गया है? वह अभी मृत्युशय्या पर पड़ी थी कि तुमने मेरी साली को लेकर शादी की बात चला दी; वह मर गई, मैं अभी रो भी न पाया कि तुम शगुन लेने पर जोर देने लगीं। क्या वह मेरी पत्नी न थी? क्या वह कोई फ़ालतू चीज थी?

माँ—शोर मत मचाओ! हम तुम्हारे फ़ायदे की बात करते हैं, रामप्रताप....

रौशन—(चीख़कर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो! अनपढ़, अशिक्षित, गँवार! उसके दिल कहाँ है? महसूस करने का माद्दा कहाँ है? वह जानवर है!

माँ—तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था....

रौशन—वे......माँ जाओ, मैं क्या कहने लगा था?

तेज़ी से मुड़कर कमरे में चला जाता है और दरवाज़ा बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए, खँखारते-खँखारते

रौशन के पिता का प्रवेश)

पिता—क्या कहता है रौशन?

माँ—वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबियत बहुत खराब है।

पिता—(खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या रात्र हो गई ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाजी है।

(ज़ोर से आवाज देता है)

—रौशी, रौशी !

(खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज)

(फिर आवाज़ देता है—)

रौशी, रौशी !

(रौशन दरवाज़ा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखें रुँआसी-सी और निगाहों में करुणा)

रौशन—(अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें, आप क्या शोर मचा रहे हैं ?

पिता—इधर आओ।

रौशन—मेरे पास समय नहीं !

पिता—(चीखकर) समय नहीं ?

रौशन—धीरे बोलिए आप !

पिता—मैं कहता हूँ, वे इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे ज़रा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन—मैं नहीं जा सकता।

पिता—नहीं जा सकता ?

रौशन—नहीं जा सकता !

पिता—तो मैं सगुन ले रहा हूँ! इस वर्षा, आँधी और तूफ़ान में मैं उन्हें अपने घर से निराश नहीं भेज सकता, घर आई लक्ष्मी को नहीं लौटा सकता। लड़की अच्छी है, सुन्दर है, घर के काम-काज में चतुर है, चार-पाँच श्रेणी तक पढ़ी है रामायण महाभारत बखूबी पढ़ लेती है।

(रोने की तरह रौशन हँसता है)

रौशन—हाँ, आप लक्ष्मी को न लौटाइए।

(खट से दरवाज़ा बन्द कर लेता है)

पिता—(रौशन की माँ से) इस एक महीने में हमने कितनों को इनकार किया है, पर इनको इनकार कैसे करें? सियालकोट में बड़ी भारी इनकी फ़र्म है। मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया है। हज़ारों का तो इनके यहाँ लेन-देन है। उन्हें कुछ बहू की बीमारी की ओर से आशंका थी। पूछते थे—उसका देहान्त किस रोग से हुआ? सो भई मैंने तो यह कह दिया—दिक़-विक़ कुछ नहीं था, जिगर की बीमारी थी। (गर्व से) तलाश लो, रौशन जैसा कमाऊ लड़का मिल भी कैसे सकता है? बेकारों की फ़ौज दरकार हो तो जितनी मर्ज़ी चाहे इकट्ठी कर लो। उस दिन लाला सुन्दरलाल अपनी लड़की के लिए कह रहे थे—कॉलेज में पढ़ती है। पर मैंने तो इनकार कर दिया।

माँ—अच्छा किया। मुझे तो आयु-भर उसकी गुलामी करनी पड़ती—बच्चे का पूछते होंगे!

पिता—हाँ, मैंने तो कह दिया—बच्चा है, पर माँ की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती।

माँ—तो आप हाँ कर दें।

पिता—हाँ मैं तो शगुन ले लूँगा।

(चले जाते हैं। हुक्के की आवाज़ दूर होते-होते गुम हो जाती है। माँ खुशी-खुशी कमरे में घूमती है, कमरे में भाषी आता है और तेज़ी से निकल आता है)

माँ—भाषी !

भाषी—मैं डाक्टर के यहाँ जा रहा हूँ !

(तेजी से चला जाता हैं बीमार के कमरे में से सुरेन्द्र निकलता है)

सुरेन्द्र—माँजी !

माँ—क्या बात है ?

सुरेन्द्र—दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

माँ—क्या ?

(आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है हवा की साँय-साँय)

सुरेन्द्र—अरुण इस संसार से जा रहा है !

(फानूस टूटकर धरता पर गिर पड़ता है। माँ भागकर दरवाजे पर जाती हैं)

माँ—रौशी, रौशी !

(दरवाजा अन्दर से बन्द है)

मा—रौशी, रौशी ?

रौशन—(कमरे के अन्दर से भर्राये स्वर में) क्या बात है ?

माँ—दरवाजा खोलो !

रौशन—तुम पहले लक्ष्मी का स्वागत कर लो !

माँ—रौशी !

....

माँ—रौशी !

(बाईं ओर के दरवाजे के बाहर से खँखारने की और हुक्के की आवाज़)

पिता—(सीढ़ियों से ही) रौशन की माँ, बधाई हो !

(रौशन के पिता का प्रवेश । माँ उनकी ओर मुड़ती है)

पिता—बधाई हो मैंने शगुन ले लिया ।

(कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रौशन का प्रवेश)

रौशन—हाँ, नाचो, गाओ, बाजे बजाओ !

(पिता के हाथ से हुक्का गिर जाता है और मुँह खुला रह जाता है ।

पिता—मेरा बच्चा ! (वहीं बैठ जाता है)

माँ—मेरा लाल ! (रोने लगती है)

सुरेन्द्र—माँजी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो

विक्रम का आत्ममेध

परिचय

डा० 'सत्येन्द्र' का हिन्दी-लेखकों में एक विशिष्ट स्थान है। आप जहाँ आलोचना के क्षेत्र में माने हुए विद्वान् तथा सफल आलोचक हैं वहाँ आपकी प्रतिभा साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी विकसित हुई है। नाटक एवं नाट्य रचना से आपका प्रेम विद्यार्थी जीवन से ही है। अभी अभी आपका विद्यार्थी जीवन समाप्त भी न हुआ था कि आपने कुणाल जैसा सफल नाटक हिन्दी जगत् को देकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। आपने कई एकांकी नाटक भी लिखे हैं, जिनका एक संग्रह 'प्रायश्चित्त' के नाम से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत नाटक 'विक्रम का आत्ममेध' आपकी एक द्वितीय रचना है, जिसमें विक्रम के त्याग पूर्ण जीवन की सुन्दर झाँकी देखने को मिल सकेगी। 'विक्रम' के अस्तित्व के विषय में कई एक मत प्रचलित हैं। डा० सत्येन्द्र ने 'सातकर्णि शकारि' को ईसा सन् ५७ वर्ष पूर्व वाला प्रथम विक्रम स्वीकार किया है, जो विचारणीय है।

मुख्य पात्र

विक्रम—विक्रमादित्य (गौतमीपुत्र सातकर्णि)।
महामात्य—प्रधान मन्त्री।
चारण—प्रधान वन्दीजन।
गणपति—मालवगण का प्रधान।
सेनापति—मालवगण का सेनापति।
सरस्वती—जैन कालकाचार्य की बहन।
वाशिष्ठी—विक्रम की रानी।
नर्तकी—उज्जैन की प्रधान नर्तकी।
गौतमी बालश्री—विक्रमादित्य की माता।
प्रतिहारी—मालवगण के कुछ सदस्य।

काल—
सन् ५७ ई० पू० के लगभग

स्थान—
अवन्ति में महाकालेश्वर का मन्दिर

नाटक

[पर्दा उठता है। सामने एक शिव-मूर्ति है, जो एक छोटे द्वार में से स्पष्ट दीख रही है। उसका शृङ्गार आज फूलों से हुआ है। ऊपर स्वर्णघट में से जल टपक रहा है। स्वर्ण के चौमुख दीपक का मन्द प्रकाश इस प्रतिमा-कक्ष में है। फूलों से लदे होने पर भी त्रिपुण्ड चमक रहा है। बाहर जहाँ तहाँ अगणित दीप जल रहे हैं। प्रतिमा-कक्ष के आगे आठ स्तम्भों का गोपुर बना हुआ है। दायीं ओर वायीं ओर एक-एक द्वार हैं, जो खुले हुए हैं। स्टेज का शेष भाग मन्दिर के प्रांगण की भाँति है। इसमें एक कुण्ड है—नाम कोटितीर्थ। गोपुर के बीच में लटका हुआ घण्टा स्पष्ट दीखता है। वह अभी हिल रहा है। वाद्य बज रहे हैं। महाकालेश्वर का अभिषेकोत्सव अभी समाप्त हो चुका है। चलती-फिरती भीड़ दिखाई पड़ती है। अधिकांश शिवस्तोत्र का पाठ करते हुए, शिव को बाहर से ही दण्डवत् कर जाते दीखते हैं। स्त्री-बच्चे सभी प्रसन्नचित्त हैं। रात्रि का प्रथम प्रहर चल रहा है। लोग-बाग घर लौटने की जल्दी में हैं। बाहर वाद्य बजते रहते हैं, किन्तु प्रांगण शून्य हो जाता है। सरस्वती का प्रवेश।]

सरस्वती—मेरा वह अपदार्थ यौवन! उसने उज्जयिनी-सम्राट् को उन्मत्त बनाया, बन्धु कालक की रोषाग्नि को भड़काया, रक्त की नदियाँ बहायीं, विदेशियों का आतंक फैलाया। और यह रूपाग्नि! यह यौवन तेज! उसने मुझे भी विगलित किया है और मेरी मातृभूमि को भी दलित किया है! महाकाल! पर यह रूप सृष्टि में रहेगा ही, सृष्टि का यह नित्य मधु है। यौवन सृष्टि का मूलमंत्र है। दोनों ही रहेंगे। इनकी पवित्रता की रक्षा सम्राट् के हाथों है, वही जब भक्षक बन जाय, वही जब लुब्धक हो जाय, वही शलभ बने, तो फिर क्या किसी कल्याण की आशा हो सकती है? मेरा विगलित सतीत्व, मेरा विदरित यौवन—वह मेरा गलित भूत, आज मुझे झंझा की भाँति चारों ओर से घेरे हुए है। भाई ने प्रतिहिंसा से इस गर्दभिल्ल-वंश का नाश कराया, पर मेरा स्त्रीत्व और मातृत्व अब भी पीड़ा से तड़प रहा है। महाकाल! जिस स्त्री के पति ने स्त्रीत्व पर कुठाराघात किया, वह अपने मातृत्व के अभिमान का अभियान सफल कर पा रही है। आज यह सातकर्णि शकारि बनकर, पुनः हिन्दुत्व की स्थापना का तूर्य फूँककर 'विक्रमादित्य' कहला रहा है। मैं उसे पूछने आयी हूँ, आज मैं कहाँ हूँ? आज स्त्री कहाँ है? मैं अब तक इसीलिए जीवित रही हूँ कि मेरे अपघाती का कुटुम्ब अभी जीवित है, जीवित ही नहीं, वह तो पूर्ण उत्कर्ष पा रहा है। क्यों है ऐसा? महाकालेश्वर, बोलो? ऐसा क्यों

हुआ ? क्या मेरे उस सत् का इतना भी मूल्य न था कि उसकी अग्नि भावी क्षेत्र को पवित्र और पावन बना सके ? मुझमें प्रतिहिंसा नहीं, देव ! मैं विक्रम से उसके पिता का प्रतिशोध नहीं चाहती। मैं तो वह प्रतिशोध उसके पिता से भी नहीं चाहती थी, पर मैं अपने 'सत्' को अपने धर्म से च्युत नहीं देखना चाहती। अग्नि को अग्नि रहने दो देव ! उसके अग्नित्व को ठंडा कर देने से समस्त सृष्टि ही ठंडी हो जायगी। मैं उसी अपने 'सत्' का सम्मान चाहती हुँ। महाकालेश्वर ! बोलो, क्या यह प्रतिहिंसा है ? 'सती' ने प्राण दिये, तुमने महाकालेश्वर ! उसका शव ढोया था ! क्यों, क्यों ? आज वही सत् विमर्दित तुम्हारे चरणों पर तड़प रहा है। और तुम यों मूक हो ! बोलो , क्या नहीं बोलोगे ? क्या उत्तर नहीं दोगे ?

[नेपथ्य में—"तुम कहती हो उत्तर नहीं दोगे ? दूँगा, उत्तर दूँगा अवश्य उत्तर दूँगा—और ऐसा उत्तर दूँगा कि तुम्हारा पूरा समाधान हो जाय।"]

सरस्वती—(चौंककर) कौन उत्तर देगा ? महाकाल, तुम दोगे उत्तर ?

[नेपथ्य में—"तुम अपना समाधान ही चाहती हो न ? यह देखो महाकालेश्वर हैं। यहीं तुम्हें उत्तर मिलेगा।]

सरस्वती—(घबड़ाई-सी) हैं, यह तो विक्रमादित्य की सी

वाणी है। देखूँ यह किसे क्या उत्तर दे रहा है? कहाँ छिपूँ, महाकाल!

[महाकाल-मन्दिर के भीतरी कक्ष में मूर्त्ति के बायीं ओर के कोने में द्वार के पास ही छिप जाती है। दीपकों का मन्द प्रकाश मूर्त्ति-कक्ष में है, बाहर अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश है। फलतः द्वार के पास के दोनों कोने अन्धकार-आवृत्त हैं। सरस्वती वहीं शरण लेती है। एक दम प्रबल तूर्यनाद हो उठता है। विविध वाद्य बज उठते हैं। घोर जयनाद "कुल-पुरुष परम्परा से आये विपुल राज-शब्दवाले, आगमों के निलय, सत्पुरुषों के आश्रय, श्री के अधिष्ठान, एक-धुरन्धर, एक-शूर, एक-ब्राह्मण, राम केशव अर्जुन भीमसेन के तुल्य पराक्रमवाले, नाभाग नहुष, जनमेजय, ययाति, राम, अम्बरीष के समान तेजवाले, महाशकारि सातवाहन-गर्दभिल्ल-कुल-सूर्य सातकर्णि श्री विक्रमादित्य की जय हो, जय हो, जय हो।" विक्रमादित्य प्रवेश करते हैं। साथ में वाशिष्ठी है। मन्दिर में प्रवेश करने पर वे एक संकेत करते हैं, अनायास ही अखण्ड शान्ति हो जाती है।]

विक्रम—(महाकालेश्वर को प्रणाम करते हैं) हे महाकाल! तुमसे क्या कुछ छिपा है? वाशिष्ठी के सन्देहों को तुम क्यों नहीं दूर कर देते? इनके प्रश्नों का उत्तर तुम्हारे अतिरिक्त कौन दे सकता है? मैं इसे यहाँ इसके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए ही ले आया हूँ।

वाशिष्ठी—मैं महाकालेश्वर से नहीं पूछती, तुम उत्तर दो।

विक्रम—तो तुम आज ही उत्तर चाहती हो—आज के इस महिमामय दिवस को देखो, महाकालेश्वर का अभिषेक देखो, अपनी पुण्य-भूमि को शकों की बर्बरता से मुक्त देखो!

वाशिष्ठी—विक्रम, विक्रम! पर मैं पूछती हूँ यह दिवस महिमामय क्यों है? यह महाकालेश्वर का अभिषेक क्यों? इस पुण्य-भूमि का यह उद्धार क्यों? यह सब तो देखते हो, पर मेरे हृदय के हाहाकार को भी देखते हो, नारी-हृदय की भूख-प्यास को भी देखते हो?

विक्रम—(विक्रम एक संकेत करता है। एकदम चतुर्दिक् विशेष प्रकाश हो उठता है, बाजे बजने लगते हैं। एक नर्तकी विशेष नृत्य करती हुई प्रवेश करती है।) वाशी! अधिक उद्विग्न मत हो। तुम्हें कुछ आराम की आवश्यकता है।

वाशिष्ठी—क्यों इतना कटु व्यंग करते हो? क्यों नारी को इतना अपदार्थ समझते हो? क्या इस नारी को बुलाकर यह सिद्ध करना चाहते हो कि नारी का यही स्थान है!

विक्रम—यह तो तुम्हारी अपनी तितिक्षा है। वाशी! मैं इस सौन्दर्य को भी देखता हूँ, इस सौन्दर्य का उपभोग भी करता हूँ, पर इसे पास नहीं समझता। इसे जीवन में स्थान देता हुआ भी मैं क्या कभी विलास में अपने कर्त्तव्य से च्युत हुआ हूँ? विलास और भोग में ही अपना जीवन-आनन्द

समझनेवाले व्यक्ति ही स्त्रियों का अपमान करते हैं। और वह नारी अपना अपमान स्वयं करती है जो कला पर जीवित न रह कर अपने शरीर पर जीवित रहती है। जनपद-कल्याणी होना बुरा नहीं, बुरा है अपने सौन्दर्य को कला का प्रसाधन न बनाकर अपना भोग्य बना लेना।

वाशिष्ठी—तुम आज चक्रवर्तित्व के मद में उन्मत्त हो, प्रिय !

विक्रम—और तुम व्यर्थ इतना व्यग्र होती हो, मुझ पर अविश्वास मत करो—सुनो यह सुन्दर गान—आज यह थोड़ा मनोरंजन करो, देवि ! महाकालेश्वर से प्रार्थना करो कि वह इस पावन-भूमि को शत्रुओं से पवित्र रखें, इसी में यथार्थ में नारी-जाति का सम्मान है। सुनो यह संगीत—

(नर्तकी का संगीत उच्च हो उठता है।)

ओ मुक्ति, ज्योति से झिलमिल जीवन-वाणी !

ओ मुक्ति !
ज्योति ओ !
झिलमिल जीवन-वाणी।
जाग्रति ओ !
एरी ! बिज्जुछटा सरसानी।

ओ उधट घटा का तमस प्रकाश प्रवाहिनि,
जीवन में सतरँग घोल उछाह-प्रदायनि,

तेरी गति-गति पर

जन-मति मद लहरानी–

ओ वाणी ! झिलमिल जीवन-वाणी !

वाशिष्ठी—ओह ! ओह ! (विकल होती है, नृत्य बंद होता है ।) मुझसे यह सब सुना नहीं जाता । मैं जाऊँगी ।

विक्रम—जाओ देवि ! माँ के पास जाओ । अव्यवस्थित चित्त को शान्त करो । प्रतिहारी !

(प्रतिहारी आता है ।)

विक्रम—प्रतिहारी ! इन्हें माताजी के पास पहुँचाओ । पर कल्याणी, इन महाकालेश्वर को तो प्रणाम करती जाओ ।

(वाशिष्ठी महाकालेश्वर को मौन प्रणाम करती है और शनैः शनैः जाती है ।)

विक्रम—नर्तकी !

नर्तकी—राजाधिराज ! (करबद्ध प्रणाम करती है ।)

विक्रम—तुम नाचो, नर्तकी ! (कुछ रुककर उसकी ओर बढ़कर) पर ठहरो ! तुम नर्तकी क्यों हो सुन्दरी ? क्या शकों ने तुम्हें गृह-जीवन से अपदस्थ कर दिया ? क्या उनके किये गये अपमान का फल भोग रही हो ?

नर्तकी—नहीं, देव !

विक्रम—ओह ये शक! ये बर्बर! कैसे उदार बनते हैं, जानती हो नर्तकी! गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक बनते हैं, ये दान करते हैं, लेणें बनवाते हैं। हाथी के दाँत! इन्हें राज्य प्रिय है, भोग प्रिय है। इन्होंने भारत के नारीत्व का अपमान किया है। पर, विक्रम के रहते तुम्हें कोई भय नहीं नर्तकी! माता गौतमी बालश्री के प्रताप से मैं भारत की इस पावन भूमि को शकों से मुक्त कर चुका हूँ। यह महाकालेश्वर की भूमि है (श्रद्धा से झुक जाता है) नर्तकी!

नर्तकी—देव!

विक्रम—नर्तकी, तो शकों ने तुम्हें अपदस्थ किया?

नर्तकी—नहीं देव, शकों ने नहीं।

विक्रम—शकों ने नहीं; हो सकता है। नारीत्व के शत्रु शक ही नहीं, भारत में ही अनेक हैं। ये बौद्ध! तो तुम किसी बौद्ध की प्रव्रज्या में फँस गयीं? वहाँ नारी क्या नारी रह जाती है? उसका समस्त जीवन लाञ्छित हो जाता है। आर्य-जाति के बल को, उसके तेज को इन मुण्डितों ने कितना विगलित किया है नर्तकी! पर नाचो तुम नर्तकी—ऐसे नाचो कि मेरे हृदय का सुप्त बल और उल्लास जाग्रत हो उठे। वह अभी सोया क्यों है?

(फिर वाद्य बज उठते हैं। नर्तकी मादकनृत्य करती है)

(गान)

चल-चल चंचल
अंचल-अंचल में फह्‌र-फह्‌र सत्वर-सत्वर
सुख-सुमन सुमनसा फूल फूल
अलि नवल विमल रस ऊलऊल
झुक झूम, घूम मद में विभोर
भर उभर-विभा से ओर-छोर
सविता का कन
कविता का पद—बढ़ चपल-चपल।
चल-चल चंचल, करदे उज्ज्वल।

विक्रम—ठहरो! (वाद्य रुक जाता है) प्रतिहारी!

प्रतिहारी—सम्राट् की जय हो!

विक्रम—प्रतिहारी! महामात्य को बुलाओ। आज महाकालेश्वर के महाभिषेक के दिन कुछ न कुछ निश्चय करना ही होगा। जाओ!

(प्रतिहारी जाता है)

विक्रम—नर्तकी! मेरे हृदय में जो बवंडर है, उसे तुम क्या समझ सकती हो?

नर्तकी—देव! बवंडर का अर्थ समझना मुझ अकिंचन के वश की बात नहीं। पर यह अनुभव अवश्य कर रही हूँ देव! कि आपके हृदय में तूफान है अवश्य!

विक्रम—अवश्य है। नर्तकी! मैं तुम्हें देखता हूँ, वाशिष्ठी

को देखता हूँ, माता को देखता हूँ, पर कुछ समझ नहीं पाता। मेरे हाथ में आज शासन है, दण्ड है, कृपाण है। मैंने शकों का नाश किया है, उनके क्रूर व्यवहारों से तुम्हें छुड़ाया है, पर मैं उस सबका कोई मूल्य नहीं समझ पा रहा।

नर्तकी – यथार्थ है देव! उसका मूल्य तो हमसे पूछिए। जिस सुख का अनुभव कर रहे हैं वह क्या आपके पराक्रम के बिना सम्भव था? जन-जन में आज एक नवीन भाव, एक नवीन स्फूर्ति भरी हुई है। वे अपने महाराज के कितने कृतज्ञ हैं।

विक्रम—मैं इसे तुम्हारी चापलूसी नहीं मानता नर्तकी, पर मैं कहता हूँ, यह मूल्य तो कोई मूल्य नहीं यहाँ शत्रुओं का कभी अभाव नहीं रहा। घर में भी और बाहर भी। अवन्तिका ने घर के शत्रु से ही तो यह सब शकों की विपत्ति मोल ली थी। और आगे कौन जानता है शत्रुओं से भूमि निरापद ही हो जायगी?

नर्तकी—मैं समझ नहीं पा रही हूँ, धृष्टता क्षमा हो देव!

विक्रम—तुम! अच्छा कुछ गाओ ही—बिना वाद्य-संगीत के गाओ—शून्य को चीरता हुआ वह गान मेरे हृदय में अकेले तीर की तरह समा जाय।

नर्तकी—जो आज्ञा देव! मुझे बड़ी ग्लानि हो रही है कि

आपके व्यथा को दूर करने में मेरी कला कुछ भी उपकारक नहीं हो रही है ! इस बार चेष्टा करूँगी ।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—देव ! महामात्य आ रहे हैं ।

विक्रम—(उल्लास से) अच्छा, आगये । आज कुछ निश्चय होना चाहिए । नर्तकी ! तो अब जाओ ।

(नर्तकी अभिवादन कर चल देती है । महामात्य का प्रवेश)

महामात्य—राजाधिराज ! (अभिवादन करता है ।)

विक्रम—महामात्य, साधु ! आपने कितने ही उत्थान-पतन देखे हैं । आपका अध्ययन भी विशद है ।

महामात्य—यह तो आपकी गुणग्राहकता है, दीनबन्धु !

विक्रम—तो महामात्य, आज शकों का भय तो जाता रहा, अपना पवित्र मालवदेश आज फिर उन्मुक्त हास्य कर रहा है ।

महामात्य—देव ! अवन्तिका का वर्णन तो अपने कवि ने यथार्थ किया है—

विद्युतवंत ललित वनिताएँ इन्द्रचाप से चित्रागार,
मुरज वाद्य-संगीत समुच्चय घन सुस्निग्ध सुमंद गुञ्जार ।
मणिमय भूमि जलद जल जैसी तुङ्ग शिखर नभ उच्चाकार,
प्रति प्रासाद ललित शोभामय बना इन्द्र-आकर साकार !

विक्रम—(म्लान हँसी हँसता हुआ) वह कवि ! वह कालि-

दास; उसकी कल्पना महान् है, और तेजवती है। उसका उज्जयिनी पर यह प्रेम हमारे लिए गौरव की बात है। पर, महामात्य, यह सौन्दर्य, यह श्री कब तक अक्षुण्ण रहेगी ?

महामात्य—भगवन्! आपकी खड्गलता से परिरक्षित इस नगरी को अब भय नहीं रहा।

विक्रम—मंत्री! यह खड्गलता किस के पास नहीं है ?

महामात्य—देव, आपकी जैसी लता आज भूमण्डल पर किसी की नहीं। आपकी इस लता ने—

(एक चारण आकर)

चारण—आपके इस खड्ग ने कहाँ अपना तेज नहीं दिखाया। कहाँ यह मानव की रक्षा के लिए दानव-समूह को त्रस्त करती हुई, विद्युत्सी चंचल नहीं हुई ? आपकी इस अपराजिता ने आपके प्यासे अश्वों को तीनों समुद्रों का पानी पिलाया है। 'असिक असक मुलक सुरठ कुकुर अपरांत अनूप विदर्भ और आकर' को इस खड्गलता ने निर्भय शीतलता प्रदान की है, और 'विझ छवत पारिचात सह्य कण्हगिरि मच सिरिटन मलय महिद सेटगिरि चकोर' पर्वतों के पतियों के मंडलों को अपनी पानिप छटा से लुभाया है और आपका भक्त बनाया है। हे राजराज, आपकी खड्गलता कल्पलता है; जिस से जन-जन को उसकी समस्त मनोकामनाएँ पूरी होती मिलती हैं। शत्रुओं को हार; मित्रों को सुख और ....

विक्रम—(गले का हार उतारकर देता हुआ) प्रियंवदक ! बस करो। यह मेरा यश-गान मत करो। यह सब पूज्यपाद महा-आदरास्पदा माता गौतमीं बालश्री की प्रेरणा और आशीर्वाद है और मालवगण के जन-जन का शौर्य है। मैं तो उनका एक अकिञ्चन किंकर हूँ। पर महामात्य, यह खड्गलता कब तक यह सब कल्याण कर सकती है— मैं भी वृद्ध हो सकता हूँ, जनगण भी दुर्बल हो सकता है, और भविष्य ?

महामात्य—भगवन् ! ऐसा न कहें। आप हमारे लिए युग-युग—

विक्रम—अमात्य, आप इस सम्बन्ध में यथार्थ को एक मूढ़ग्राह के समक्ष क्यों टालना चाहते हैं ? आपको तो ठोस वास्तविकता से काम पड़ता है। आज इस पवित्र पुरी अवन्तिका में ही मुझसे पहले कितने राजा राज्य नहीं कर गये ? क्या यह पुरी दासत्व की पीड़ा से कदर्थित नहीं हुई ?

महामात्य—भगवन् ! हुई ! अवश्य हुई।

विक्रम—और यही तो मेरी पीड़ा का कारण है। यह असि-बल, महामात्य, पशु-बल से क्या बढ़कर है ? पशु के पास सींग हैं, नख हैं, हमने मनुष्य होकर तलवार उठा ली है। आत्मरक्षा के लिए क्या इसी का सहारा लेना होगा ? फिर जन का इससे क्या लाभ है ? मैं जन का इससे क्या उपकार कर सकता हूँ ?

महामात्य- राजराज ! तो क्या आप समझते हैं— अशोक ने बौद्ध प्रतिष्ठा करके जन का कल्याण किया ?

विक्रम—ओह ! बौद्धों ने भारतीय चरित्र और आचार को दुर्बल बना दिया।

महामात्य—तो क्या आप समझते हैं-जैनों से जन-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ है ?

विक्रम—यथार्थ में महामात्य इन सबने धर्म को देखा है, धर्मी को नहीं। एक को अयथार्थ मानकर, दूसरे की यथार्थता में वह इतने लग गये कि उसकी आन्तरिक अयथार्थता की ओर ध्यान ही नहीं दिया।

महामात्य—भगवन् ! आपने यथार्थ कहा है। यथार्थ ही यथार्थ को लेकर चलना होगा ? जिसे अयथार्थ कहा जा सकता है, वह भी मनोभूमि में उतरकर यथार्थ हो जाता है, यदि उसको परिपक्व विश्वासों ने पोषित कर रखा हो। बौद्धों का माध्यमिक मार्ग निरे आचार पर आश्रित है, और जिस करुणा का सन्देश उसमें है वह पशुओं के शव पर निर्भर करती है। उसने केवल शरीर के तप और भोग के मध्य का ही मार्ग बताया। जैनों ने दूसरी ओर अति का।

विक्रम—साधु ! महामात्य, तुम्हारी इस विवेचना से मेरे मस्तिष्क के कितने द्वार खुलते जा रहे हैं। यथार्थ में व्यवस्था वह होनी चाहिए जिसमें सब दिशाओं में समन्वय हो। माहामात्य ! साधु ! भोग भी तपस्या चाहता है !

महामात्य—भगवन् ! उपनिषदों ने इसीलिए कहा है—तेन

त्यक्तेन भुञ्जीथा ।

विक्रम—त्याग और भोग का समन्वय तो ठीक । पर तप का रूप क्या ? एक तो अवस्था है जीवन की, अपरिपक्वता सम्बन्धी । उस समय का भोग क्या विष नहीं होगा ?

महामात्य—विष से भी महान् घातक !

विक्रम—ठीक, परिपक्व पर भोग !

महामात्य—हाँ !

विक्रम—पर मनुष्य तो युवक होने के बाद वृद्ध भी होता है ? क्या भोग में वह तब भी लगा रहे ? और क्या उसके अनुभव उसी तक रह जाने चाहिए ?

महामात्य—तब भोग के अर्थ होंगे जन को विषयलिप्सु और दरिद्र बनाना, जाति के लिए एक बोझ खड़ा कर देना !

विक्रम—और समाज में क्या सब को साधु अथवा भिक्षु ही हो जाना चाहिए ?

महामात्य—हमें विचारक चाहिए, हमें शत्रु-परित्राण करनेवाले चाहिए, हमें उत्पादक और व्यवसायी, हमें कार्य-वाहक चाहिए ।

विक्रम—ठीक ! यही तो यथार्थ समन्वयी व्यवस्था है । चारों वर्ण और चारों आश्रम ! महामात्य महामुनि मनु से

पूछना और ब्राह्मणों को परिषद् से विचार कराना कि जीवन में यह सम्पूर्ण समन्वय किस विधान से पूर्ण हो सकता है ? ओह, तभी नारी और पुरुष का भी ठीक सामञ्जस्य होगा, विविध रक्त-वर्ण अपने-अपने यथा स्थान निश्चिन्त रहेंगे, और संकर का भय जायगा। वाशिष्ठी ! वाशिष्ठी ! तब नारी अप-दार्थ नहीं रहेगी। तब वह चाहे किसी भी असिधारी के बलि पर बलि होकर संकर सन्तान उत्पन्न नहीं करेगी। तब वह उन समस्त अव्यवस्थाओं को दूर कर देगी जिनसे समाज रसातल को जा रहा है और जिनके कारण चाहे जो विदेशी इसे पददलित कर सकता है। तब यह पशु-शक्ति का समकक्ष क्षत्रियत्व संयम में आ सकेगा-बाहुओं को निग्रह में रखने के लिए मस्तिष्क के स्वस्थ शासन की आवश्यकता प्रतिपल है। और यही यथार्थ आर्यमार्ग है। महामात्य जय-आर्य धर्म की जय !

महामात्य—जय !

(नेपथ्य में—"जय ! राजराज विक्रमादित्य की जय !")

विक्रम—यह कैसा जयनाद है ? महामात्य।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी—राजराज ! मालवगण !

विक्रम—ओह ! मालवगण ! आज इस महाकालेश्वर के अभिषेक के अवसर पर मालवगण का स्वागत !

(तूर्यनाद वाद्य-सगीत और जय की तुमुल ध्वनि के साथ मालवगण के प्रमुखों का प्रवेश। सब हाथ में मालाएँ और मुकुट लिये हुए हैं।)

विक्रम—स्वागत भद्रगण! कितना महानन्द है। आपके गणपति (गणपति का आलिंगन करता है।) आपके सेनापति। (सेनापति का आलिंगन करता है) सेनापते! विक्रम आपका कितना कृतज्ञ है? आपने मेरी दक्षिण बाहु की भाँति गर्दभिल्यों का साथ देकर उनका महत् उपकार किया है। और जन-जन की स्वतंत्रता तो आप लोगों को कितनी प्रिय है, यह अविदित नहीं आइए! महाकालेश्वर की पूजा की जाय।

गणपति—भद्र! मालवगण अपने मूलस्थान को छोड़कर यहाँ अपनी स्वतंत्रता के लिए आया था। पर उसका यह छोटासा समुदाय यहाँ भी राज-लोलुप लुटेरों से मुक्त नहीं रह सका। आपने उसे अभय दिया है। वह अपनी कृतज्ञता प्रकट करने आया है। उसके ऊपर आपका बड़ा ऋण है! भद्र...

विक्रम—गणपति! हम दोनों ही एक दूसरे के ऋणी हैं!

गणपति—यथार्थ है भद्र! यह विनम्रता आपको शोभा देती है। पर हमारे गण ने एक निश्चय किया है

विक्रम—आदेश करें, गणपति! विक्रम जन-जन का सेवक है। आज महाकालेश्वर की साक्षी में, वह जन के उपकार के लिए किसी भी व्रत का अनुष्ठान कर सकता है गणपति आज महाकाल का अभिषेक है। आज उसकी कृपा से मुझे भारतीय सभ्यता का, उसके अन्तर रहस्य का यथार्थ

प्रकाश मिल रहा है। आप आदेश करें! मेरा कितना सौभाग्य है!

गणपति—भद्र! राजराज मालवगण भी आपकी प्रजा होना चाहते हैं।

विक्रम—[चौंककर एक पग पीछे हट जाता है] गणपति! गणपति! न! महामात्य! आपने सुना! न! यह उस आर्य-प्रकाश के विरुद्ध है? महाकाल! क्या गण को यों कदर्थ करके राजतंत्र दृढ़ हो सकता है और भावी भय से दूर रह सकता है? गणपति! विक्रम का विक्रम विक्रम के ही साथ है, पर गण का विक्रम जन-जन के साथ है। आप इन महाकालेश्वर शिव को पिता मानते हैं?

गणपति—[प्रणम्य होकर] निश्चय! शिव के हम पुत्र हैं!

विक्रम—महामाता पार्वती के शरीर के कणकण से जुट-कर आप प्राणवान् होकर शक्तिशाली बने हैं।

गणपति—सत्य है विक्रम!

विक्रम—गणपति! मैंने आज इन महाकालेश्वर का उज्जैन में, इस अवन्तिपुरी में महाभिषेक कराया है। इस अभिषेक से महाकाल शिव की ज्योति पुनः जाग्रत हो उठी है। यह देवाधिदेव महेन्द्र, महेश, आत्म-अनात्म, साकार-निराकार, सृष्टि और संहार सब के

अधिष्ठाता हैं, यह हमारे लिए पूज्य हैं। इसके पुत्र की शक्ति की हम चाहना कर सकते हैं। उसके गण और गणपति इतने दीन हों तो शिव के भक्त की लाञ्छना होगी। पर महामात्य!

महामात्य—राजराज!

विक्रम—मालवगण का यह मैत्री-सन्देश, भारतीय सभ्यता में और राष्ट्रीयता में एक प्रमुख हाथ रखेगा। आज से प्रजा को बताओ कि वह पहले गणेश और गणपति का स्मरण करके तब अपना कार्य आरम्भ करे। सबको गण और गणेश का महत्व विदित रहेगा।

गणपति—[विक्रम के माला डालता हुआ] महान् हो विक्रम! यथार्थ ही महान् हो।

विक्रम—महामात्य! राजतंत्र और गणतंत्र का सामञ्जस्य होना चाहिए। इनके समन्वय से ही यथार्थ शासन-शक्ति बनेगी। महाकाल! विक्रम गणों का एक रक्षक बनेगा। आशीर्वाद दो महामात्य! [महाकाल को प्रणाम करता है] गणपति! आपकी प्रजा ने हमेंअपना राजा निर्वाचित किया है?

गणपति—यथाथ ही! सर्वसम्मति से गण ने आपको ...।

विक्रम—पर गणपति, भय के कारण ही मुझे यह आत्म-समर्पण करना पड़ा है।

गणपात—आपके व्यक्तित्व का प्रेम भी, देव!

विक्रम—ठीक है। मैं उसका मूल्य समझता हूँ गणपति! उनके निर्वाचन को स्वीकार करता हूँ। और गणपति, मैं चाहता हूँ कि आप मुझे अपना राजा मानते हुए भी अपने गणतंत्र को सुचालित रखें। आप अपना कार्य चलायें। बाहरी दुर्बलताओं का त्राणकर्ता मैं बनूँगा। महामात्य!

गणपति—राजराज विक्रम की जय!

विक्रम—नहीं। महाकाल शिव की जय! गणपति मैं गण के साधारण जन की भाँति जन-जन में स्वयं विचरूँगा और उनके दु:ख-सुख को अपनी आँखों देखूँगा। महाकाल, अभय दो! महामात्य! पर यह भय नितान्त लुप्त नहीं हो सकता जब तक कि समस्त देश संगठन में नहीं बँध जाता इसके लिए क्या विधि है?

महामात्य—ऋषियों ने अश्वमेध या राजसूय—

विक्रम—ठीक है! ठीक है! मैं अश्वमेध का विधान करूंगा। महामात्य! रात्रि बहुत बीत रही है। मालवगण के उचित सत्कार का प्रबन्ध—

महामात्य—आप सुनिश्चिन्त रहें देव!

विक्रम—गणपति, आप इसे अपना ही गृह समझें।

गणपति—गृह समझकर ही आये हैं, देव, और अपना घर अब पूरी तरह पाकर ही लौटेंगे। देव, आपका त्याग और

संकल्प आपको युगयुगों तक अमर करेगा।

विक्रम—मुझे नहीं; मेरे राष्ट्र और मेरे जन को, महाकाल अडिग और अमर करो।

(जयघोष करते हुए गणपति आदि का प्रस्थान)

विक्रम—महाकाल ! ईश ! तुम्हारी इस सेवक पर कितनी कृपा है। अब यह आपका अकिञ्चन इस देश को दृढ़ सूत्र में जकड़ देगा। अन्तर से भी और बाहर से भी। बल से भी, करुणा से भी; प्रेम से भी, न्याय से भी। देव,आशीर्वाद दो। माँ से और आज्ञा लूँ।

(शिव को प्रणाम करता है)

(नेपथ्य में—राजमाता महादेवी गौतमी बालश्री की जय !)

विक्रम—ओहो ! माँ ! माँ आई हैं। महाकाल ! माँ आई हैं।

(राजमाता का प्रवेश)

विक्रम—(बच्चों की तरह भागता हुआ) माँ, माँ! मेरी माँ ! मैंने निश्चय किया है मैं अश्वमेध यज्ञ करूँ ! तेरी क्या आज्ञा है माँ ! माँ ! मेरी……… ……।

(राजमाता इंगित से उसे रोक देती हैं और उपेक्षा करती हुई सीधी महाकाल के पास जाती हैं। विक्रम एकदम स्तब्ध हो, धक्का-सा खा शिथिल हो जाता है फिर सँभलता हुआ, कुछ कराहता हुआ)

विक्रम—अः माँ ! (भयभीत-सा माँ की ओर बढ़ता है।)

गौतमी—महाकाल ! तुम्हारा अभिषेक हो गया। मेरे

आज्ञाकारी प्रिय पुत्र ने मेरी आज तक की समस्त मनोकामनाएँ पूरी कर दी हैं—

विक्रम—माँ, माँ, तेरा आज्ञाकारी विक्रम—

(कुछ उत्तेजना में आगे बढ़ता है, पर माँ को अविचल पाकर रुक जाता है।)

गौतमी—उस मेरे लाल ने पहले से भी बढ़ाकर मुझे गौरव प्रदान किया हैं। मेरा हृदय गौरव से फूलना चाहिए। संसार मेरे गौरव पर आज गौरवान्वित है! स्त्री जाति आज मेरे विक्रम की अत्यन्त कृतज्ञ हैं। पर देव! मैं क्या कहूँ? मेरी व्यथा तुम्हीं जानते हो! आज तुम्हारे महाकालाभिषेक का मैं दुखी हृदय से ही स्वागत कर रही हूँ, देव!

(सिर झुकाती है और फिर मन्द गति से उदास लौटने लगती है)

विक्रम—(अत्यन्त उद्विग्न होकर) माँ माँ! (उसके पैरों में गिर पड़ता है)

गौतमी—(उसे उठाकर) लाल!

विक्रम—मुझसे रुष्ट क्यों हो? मुझसे क्या अनाचार हो गया है? तुम इतनी दुखी क्यों हो? बोलो। बोलती क्यों नहीं? बोलो माँ! क्या आज मैं आपकी सेवा में कोई त्रुटि कर गया? बोलो—

गौतमी—विक्रम, वत्स! सो कुछ नहीं। पर आज मेरा हृदय एक शाप से दोलित हो उठा है।

विक्रम—शाप! शाप! माँ! क्या शाप?

गौतमी—पुत्र, जानना ही चाहते हो ?

विक्रम—माँ को यदि उसमें कोई क्लेश न हो ?

गौतमी—ओह ! (कुछ उन्मादावस्था में) वह......वह बड़ी दुःखद कथा है। मैंने चाहा था, कि जिसने मेरे पति से राज्य छीनकर इस मातृभूमि को दासता की शृंखला में जकड़ा है उसे अपने इस दुष्कृत्य का परिणाम भोगना पड़े। तुमने मेरे आदेशों के अनुसार मेरी इस इच्छा की पूर्त्ति की ! मैंने अपने पति का प्रतिशोध करा लिया। मेरा पत्नित्व सफल हो गया, मेरा मातृत्व सफल हो गया, विक्रम ! तुम आज अपने पिता से भी बढ़कर दीप्तिमान हो उठे हो ! क्या शौर्य, क्या दान, क्या न्याय सभी में तुम्हारी समानता करने वाला कोई नहीं। कहीं ठिकाना है इस प्रभूत गौरव का ! पर, मेरे हृदय को आज चैन नहीं एक शाप, सिर पर मँडरा रहा है।

विक्रम—माँ, बताइये मैं उसका निराकरण करूँगा। यदि—

गौतमी—वह भी एक ऐसा ही दिन था। जैन श्रावकों के मठ में निरीक्षण करने तेरे पिता गये थे। वहाँ जैनों के प्रमुख आचार्य कालक की बहिन सरस्वती पर उनकी दृष्टि पड़ी। कितनी प्रभूतसौन्दर्य की राशि थी वह ! तुम्हारे पिता का मन डोल गया। राजमद उन्हें हो आया। मेरा नारीत्व विफल हो गया। मैं उन्हें नहीं रोक सकी। कालक की अनुनय-विनय उन्हें नहीं रोक सकी। उन्होंने बलपूर्वक उस कोमलांगी, कुमारिका सरस्वती का अपहरण कराया। और........

और पुत्र ! अब क्या कहूँ ? राजमद से विमर्दित उस सरस्वती का नारीत्व जो चीत्कार कर उठा, वह हृदय में शतशः वज्रों की भाँति कड़क उठता है। यह तुम्हारा कुल उस कलंक की छाया से कलुषित है। कालक ने जो अपराध किया, तुम्हारे पिता को दण्डित करने के लिए विदेशियों को लाकर जन-जन को प्रपीड़ित किया उसने उस अपराध को कितना बढ़ा दिया है ? तुमने अभी कालक के अपराध का प्रतिशोध किया है। नारीत्व के प्रति किये गये उस विकट ताण्डव का प्रतिशोध कहाँ है ? मैं उसी को देख रही हूँ। तुम अश्वमेध करने जा रहे हो आत्ममेध भी किया है ? राजमद के लिए अंकुश (विक्षिप्त-सी) कालक.......वह रहा कालक ! कैसी क्रूर दृष्टि से देख रहा है। और इतना करके भी कालक तुम्हारी प्रतिहिंसा दूर नहीं हुई ? तुम जैन हो, क्षमा तुम्हारा मंत्र है, अहिंसा तुम्हारा धर्म है—पर ओह (मन्दिर की ओर देखती हुई) ..ओह यह सरस्वती। बहन मैं अपराधिनी हूँ ! पर.....पर......(मन्दिर से शीघ्रतापूर्वक-जाती है।)

विक्रम—माँ, माँ, तो बताओ, मैं क्या करूँ ? ओह इस पाप और अभिशाप से कैसे मुक्ति मिलेगी माँ ? तुम्हीं मेरी मंत्रदाता हो–माँ, माँ !

[वह भी तेजी से माँ को पकड़ने भाग जाता है—थोड़ी देर मंच खाली रहता है। प्रकाश मन्द हो जाता है। फिर प्रकाश बढ़ते ही वाशिष्ठी एक तलवार लिए आती है।]

वाशिष्ठी—अयँ, यहाँ तो एक दम शान्ति है ! कहाँ गये जीवननाथ विक्रम ! मेरी आत्मा युद्ध के विरुद्ध चीत्कार कर उठी है। तलवार के घाट उतरकर पुरुष नारी को कितना अकिंचिन कर छोड़ जाता है ! वे मेरे हृदय की वेदना को समझते हैं, समझकर सहानुभूति भी रखते हैं, पर वे कुछ करते नहीं दीखते। मैं आज इस तलवार को इस महाकाल के सामने तोड़ दूँगी। हिंसा-अनाचार अपने पति के हाथ से नहीं होने दूँगी। महाकाल—(बाहर आवाज आती है—'माँ'—'माँ')

वाशिष्ठी—(चौंककर) कौन ? वही हैं ? रुकूँ, देखूँ क्या करते हैं ?

[तलवार को शिव के पास रख देती है। स्वयं चली जाती है। विक्रम का प्रवेश]

विक्रम—माँ, माँ, अभिशाप ? ओह, यह राजमद ! पिता को राजमद ! और उनके मद का दुष्परिणाम भोगा प्रजा ने। कालक, अपनी अग्नि को समेटो। सरस्वती माँ ! अपने अभिशाप की प्रक्रिया को रोको ! राजतंत्र के लिए एक सीमा बनो !...पर, नहीं इस अग्नि का शमन नहीं होगा। राजपद मद है। शक्ति का मद है। मैंने गण को जीवित घोषित किया है, पर क्या वह राजपद पर अंकुश लगा सकेगा ? यह बाहरी साधन है। माँ ने कहा—आत्ममेध ! पिता के इस पाप का प्रायश्चित्त—(कुछ देर स्तब्ध। महाकाल के पास जाकर करबद्ध) महाकाल तुम्हीं बताओ न ! इसका प्रायश्चित्त बताओ !

बताओ कैसे अपमानित नारीत्व का प्रतिकार हो, बताओ कैसे माँ के अभिशापित हृदय को शान्ति मिले—कैसे बताओ कैसे ?

[तलवार पर प्रकाश पड़ता है, वह चमचमा उठती है—विक्रम की उसपर दृष्टि पड़ती है—कुछ स्तब्ध]

विक्रम—(अट्टहास कर उठता है) हः हः यह तलवार ! (धीरे-धीरे उसे उठाता है) शिव ! क्या यह तलवार अश्वमेध की सन्नद्धता के लिए आशीर्वाद है ? महाकाल ! अश्वमेध ! माँ....माँ....आत्ममेध ! ओह, आत्ममेध !

[शान्त होकर, प्रकृतिस्थ होकर]

विक्रम—महाकाल ! समझ गया ! मुझे आत्ममेध करना होगा । राजमद का एक ही प्रायश्चित्त है । राजा अपना सर्वस्व समर्पण करे । वह समर्पण भी उन्माद से नहीं, विचार से, जन-श्रद्धा से । देव ! तुम जन प्रतीक हो ! आज मैं इस तलवार से अपने इस शिर को धड़ से अलग कर तुम्हारी भेंट करता हूँ । देव ! जन-जन यह विश्वास करे कि जिस शिर में मद होता है, वह जन के इष्ट के पदतल में लोटता है । और देव ! राजतंत्र देखे कि विना अपना मस्तक जन के आचार पर चढ़ाये राजशक्ति का कल्याण नहीं, यही न महाकाल ! तथास्तु ! माँ तुम प्रसन्न हो—तुम्हारा आज्ञाकारी आज आत्ममेध कर रहा है । वह आवेग में नहीं है—शान्तचित्त और

विचारपूर्वक ऐसा कर रहा है। कालकाचार्य ! आज आपके प्रति किये हुए अन्याय के प्रतिशोध की अन्तिम आहुति है। प्रजा कल अपना कोई पवित्र राजा बनाये ! माता सरस्वती ! तुम्हारे कदर्थित नारीत्व का तेज युगयुग तक राजमद को शासित रखे और विक्रम भारत की सभ्यता के यथार्थ महत्त्व को प्रकट करनेवाला बने।....तो शिव ! सबकी इच्छापूर्ण हो !

[तलवार उठाकर सिर पर मारना चाहता है—वाशिष्ठी चीखकर पछाड़ खाकर गिर पड़ती है—सरस्वती शिव-मन्दिर से बाहर आकर विक्रम का हाथ पकड़ लेती है]

सरस्वती—वत्स—क्षमा !

विक्रम—माँ पार्वती ! मुझे आत्ममेध—

सरस्वती—तुम्हारा आत्ममेध पूरा हुआ पुत्र ! तुम्हारे रोम-रोम ने तुम्हारे राजमद को ही नहीं, युगयुग के राजमद को विगलित कर दिया है। मेरा जैसा कदर्थित नारीत्व भी तुम्हारी इस महत्ता पर पूर्ण गौरव प्राप्त कर उठा है।

विक्रम—माँ-माँ ! [पैरों में गिर पड़ता है] मेरे इस कटे मस्तक को अपने करों से मेरे धड़ पर फिर स्थापित करो, जिससे इस राजमद से फिरे शिर को यह ज्ञात रहे कि यह नारी की कृपा से इस स्थान पर है।

सरस्वती—उठो वत्स (उसे उठाती है)

(वाशिष्ठी के पास पहुँचकर)

सरस्वती—रानी, उठो !

वाशिष्ठी—(उठते हुए) प्रिय, प्रियतम !

(उठकर विक्रम के कन्धे पर शिर रख देती है और मौन हो जाती है)

सरस्वती—रानी ! पशुओं के लिए तलवार की आवश्यकता है। इसे तोड़कर तुम नारी-भय का निराकरण नहीं कर सकतीं, बढ़ा ही दोगी। अभी मानव को मानव बनने के लिए कितने उद्योग और कितनी क्रांतियाँ करनी पड़ेंगीं।

(गौतमी का उन्मादावस्था में प्रवेश)

गौतमी—महाकाल ! सरस्वती से कहो, वह मेरे पति, मेरे पुत्र को क्षमा करें। उसके शाप की आग संसार को खाये जाती है। मैं विकल हूँ, तुम्हारी शरण हूँ। पर, देखो शिव ! तुम भी उसके समक्ष कुछ भी नहीं कर पा रहे। वह ! वह ! सरस्वती, सरस्वती ! क्षमा—क्षमा—

सरस्वती—(आगे बढ़कर गौतमी को साधती है) बहन गौतमी !

(गौतमी एकदम स्तम्भित होती है—सरस्वती को देखती है—विक्रम को देखती है।)

गौतमी—सरस्वती ! सरस्वती—क्षमा !! क्षमा !!!

सरस्वती—बहन ! मैं क्षमा करूँगी ! किसे ? जिसने अपराध किया, वह कौन था ? कहाँ है वह ? मैंने सबको अन्तःकरण से क्षमा किया ! मेरा अपराध उनका वरदान बन गया है, देवि, तुमसी माता पाकर ।

गौतमी—क्षमा कर दिया ! बहिन ! क्षमा कर दिया । ओह, प्यारी बहन ! (सरस्वती की गोद में गिर पड़ती है)

(तीव्र प्रकाश वाद्य बज उठते हैं—एक संगीत की मधुर ध्वनि हो उठती है । प्रकाश धीरे-धीरे बन्द होता जाता है । यवनिका धीरे-धीरे गिरती है । नैपथ्य में जयजयकार होता है ।)

मेघ-जन्म

पात्र-सूची

विक्रमादित्य—मालवगण-मुख्य, अवन्तिनाथ।

महादेवी—विक्रम की महारानी।

कालिदास—प्रसिद्ध महाकवि।

चित्ररथ—अन्य कवि।

वीरबाहु—अन्य कवि।

स्थान—उज्जयिनी। काल—ई० पू० सन् ५७

परिचय

प्रो० चन्द्र से हिन्दी-जगत् आलोचक, टीकाकार, कहानी लेखक, नाटककार संपादक एवम् अध्यापक के रूप में परिचित है। एकाँकी नाटककार के रूप में भी उन्होंने जब-तब पर्याप्त सेवा की है। उनके कई एकांकी अब तक प्रकाश में आ चुके हैं। जैसे लोई, मेलाराम, मेरादिल, पाँच सो के पाँच, २६ जनवरी, मेघजन्म आदि। इस संकलन में मेघ-जन्म अन्य कलाकारो की कृतियों के साथ संयुक्त कर दिया गया है। मेघ-जन्म में कालिदास द्वारा मेघदूत लिखे जाने विषयक मौलिक कल्पना को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें महाकवि कालिदास के काव्य-विषयक उच्च दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की गई है साथ ही यह भी प्रदर्शित किया गया है कि वियोगी हृदय ही ऐसे वियोग पूर्ण काव्य को प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकता है।

नाटक

दृश्य १

(उज्जयिनी के एक प्रासाद में शक-मान-मर्दन तथा मालवगण-स्थिति के पश्चात् महापराक्रमी विक्रमादित्य साहसांक शयनासीन विचार-मुद्रा में ।)

विक्रमादित्य—(एकान्त कथन) प्रभु की असीम अनुकम्पा से मालवों की बिखरी हुई शक्ति सुसंगठित हो गई, शकों के आतंक का निवारण हो गया, जैसे कि विषधर का फन सर्वदा को कुचल दिया गया हो। चारों ओर सुख-शान्ति का साम्राज्य है, प्रजा ज्ञानोपार्जन कर धर्मपूर्वक व्यवसाय-वृद्धि में संलग्न है। सभी ओर शान्ति है, पर न जानें क्यों (अपने हृदय पर हाथ रखकर) अभी यह हृदय शान्ति-लाभ नहीं कर रहा। इसकी प्यास कभी बुझ सकेगी ? जिस दिन बुझ जाएगी यह भी बुझ जाएगा । एक हार गूँथना चाहता हूँ, पाषाण-रत्नों का नहीं, जीते-जागते रत्नों का। मन मानता ही नहीं, मचले ही जाता है। आठ रत्न हैं, नवाँ

और चाहिए, सर्वाधिक प्रभापूर्ण, सुमेरु होने के योग्य। चित्ररथ ? उँहुँ; वीरबाहु ? वह भी नहीं। कालिदास ? संभव है। महादेवी तो पूर्व से ही उसके काव्य पर मुग्ध हैं। इतनी अभिभूत कि मुझ तक को भुला बैठी है, जब देखो तब कालिदास और उसके काव्य की रट है। (नेपथ्य में महादेवी—अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयोनाम नगाधिराजः) यह देखो कुमारसम्भव की प्रथम पंक्ति अब भी गाई जा रही है, हाँ, तो परीक्षा लेनी होगी, परीक्षा, जिसकी अग्नि में तपकर सोना कुन्दन बन जाता है, और भी अधिक तपाने से स्वयं भस्म हो दूसरों को जीवन-दान देता है—मृतकों में प्राणों का संचार कर देता है.......।

(महादेवी का प्रवेश)

महादेवी—(बात काटते हुए) कौन है वह जो मृतकों में प्राणों का संचार कर देता है ? कौन है वह भाग्यशाली जो आज आपके चिन्तन का विषय बना हुआ है ?

विक्रम—(चौंककर) ओह, तुम ! तुम क्या नहीं जानतीं, मृतकों में प्राण संचार करनेवाले वे कौन हैं ? वे हैं मेरे कवि चित्ररथ और वीरबाहु !

महादेवी—(असहमति की मुद्रा में) उनकी कविता में ऐसा तो कुछ.......।

विक्रम—(कुतूहल-सा दिखाकर) तो तुम यह स्वीकार नहीं करतीं ?

महादेवी—(किंचित् रुक्षता से) मेरे स्वीकार करने न करने से बनता-बिगड़ता भी क्या है ?

विक्रम—ओह, इतना असन्तोष ! भला ऐसा क्यों ? अरे समझा, मैं शयनासीन हूँ और मेरे हृदय-मन्दिर की देवी, महादेवी, यों खड़ी रहें। आओ-आओ, मेरे वामांग में आसीन हो। (दोनों हाथ बढ़ाकर महादेवी के हाथों की उँगलियों में उँगलियाँ पिरोकर बरबस खींचकर अपनी बगल में बिठा लेता है और स्वयं किंचित् मुड़कर प्रश्न करता है) हाँ, तो आज यह स्वभाव से ही अराल भ्रकुटियाँ और भी विकराल बन बेचारे चित्ररथ और वीरबाहु पर क्यों तन गई हैं ?

महादेवी—नहीं तो, ऐसी तो कोई बात है नहीं; पर मैं समझती हूँ कि आप उन्हें आवश्यकता से अधिक सम्मान दे रहे हैं, और........

विक्रम—कहे जाओ, और क्या ? रुक क्यों गईं ?

महादेवी—और मुझे नहीं सुहाती उनकी कविता ?

विक्रम—(कुछ कुरेदती-सी दृष्टि से) 'और' के पश्चात् तुम क्या यही कहना चाहतीं थीं ? मेरे साथ यह दुराव कब से महादेवी ?

महादेवी—(विषण्ण-सी होकर) दुराव की इसमें क्या बात है ? मुझे नहीं सुहातीं उनकी रचनाएँ। वही 'टवर्ग' की टाँय-टाँय और लम्बे-लम्बे समासों से भरी चाटुकारी-पूर्ण........।

विक्रम—(तनिक उत्तेजित स्वर में) महादेवी !

महादेवी—(कुछ रपटते स्वर में) बस, आलोचना का एक वाक्य भी पूरा न होने दिया। आप न्यायमूर्ति हैं, यों डपट-कर आप मेरे प्रति अन्याय कर रहे हैं।(कविता का सम्बन्ध किसी देश, काल और व्यक्ति से नहीं, वह तो उसके पाँव धरने को आधार-मात्र है, उनका सहारा-भर लेकर तीनों कालों में कविता एक-रस रहनेवाला सत्य व्यक्त करती है।) और यह सामर्थ्य इन चाटुकारों में ....

विक्रम—(तनिक और उत्तेजित होकर) फिर वही बात! महादेवी तुम्हें हो क्या गया है ? आज जैसा विरोध तो तुमने कभी भी प्रदर्शित नहीं किया ?

महादेवी—देव, यदि मैं आपकी अर्द्धांगिनी होकर सत्य व्यक्त नहीं कर पा रही हूँ तो बेचारी प्रजा.......।

विक्रम—(और बिगड़कर) मेरे न्याय-विधान पर भी आक्षेप ! इन कवियों की बात को लेकर तुम व्यर्थ उलझ पड़ी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे ध्यान में कोई अन्य कवि झूल रहा है,......

महादेवी—(मुँमुँ पर हाथ रखकर सिसकती-सी उठ खड़ी होती है)

विक्रम—(झपटकर हाथ पकड़कर रोकता है) विक्रम के सम्मुख आकर कोई भी न्याय प्राप्त किये बिना नहीं जा सकता। बोलो, किसके विषय में क्या कहना चाहती हो ?

महादेवी (फुफकारते हुए) मुझे किसी के विषय में कुछ नहीं कहना।

विक्रम—कहना ही होगा, अन्यथा विक्रम का राजदण्ड अपने-पराये की सीमा से बाहर है, बोलो!

महादेवी—(चुप)............।

विक्रम—चुप क्यों हो? तुम्हें आरोप सिद्ध करना होगा महादेवी! तुम मेरे इन कवियों को चाटुकार क्यों बताती हो? और किस सौभाग्यशाली को.........।

महादेवी—(दाँत पीसती हुई) फिर वही बात! सहन की भी कोई सीमा होती है। आप मालवगण मुख्य हैं, आपको सबकी योग्यता की परख होनी चाहिए, श्लाघा की शलाका में लगे मधुमय शब्दों को चखने से पूर्व यह भी देख लेना योग्य है कि मधु के साथ कहीं हलाहल तो नहीं मिला दिया गया।

विक्रम—[भर्त्सना की हँसी के साथ] ओहो, अब समझा, तो आपका यह विचार है कि अपने इन दोनों कवियों के प्रति पक्षपात कर मैं किसी को उसके अधिकार से वंचित कर रहा हूँ।

महादेवी—जी, आप ठीक समझे हैं।

विक्रम—तो फिर कौन है वह (किंचित् सोचने का सा नाट्य करते हुए) तो वह सौभाग्यशाली कालिदास ही तो नहीं है, जिसपर आपकी कृपा..........

महादेवी—महाराज, व्यंग्य छोड़िए; आप न्याय कर

रहे हैं, न्याय-विधान के बाहर न जाइए। कालिदास की बात जब आपने उठा ही ली हैं तो मैं कह सकती हूँ कि उसके प्रति अन्याय हुआ है।

विक्रम—(कड़ककर) अन्याय हुआ है! मैं न्याय करूँगा, महादेवी, ऐसा न्याय करूँगा जिसे संसार युगयुगान्तर पर्यन्त भुला न सकेगा। तुम कालिदास के विषय में क्या कहना चाहती हो?

महादेवी—यही कि वह चाटुकार नहीं है, इस कारण आप उसको उसके अनुरूप सम्मान नहीं दे रहे हैं। आपने जैसे अपने न्याय की दुहाई देकर युग-युगान्तर तक न भुलाये जाने की बात कही है उसी को अपने पक्ष में लेकर मैं कहना चाहती हूँ कि कालिदास जैसा महाकवि 'भूतो न भविष्यति'। उसका उचित सम्मान कर आप अपना ही गौरव बढ़ाएँगे, अपने को ही सम्मानित करेंगे।

विक्रम—(अवहेलना की हँसी हँसकर) 'भूतो न भविष्यति'! अनुचित ममत्व में ऐसा ही दीखता है। पक्षपात

महादेवी—(दर्प के साथ) महाराज, आपका अधिकार मेरे प्राणों पर है, आप उन्हें अनायास ही ले सकते हैं, पर यों उत्पीड़न का अधिकार आपको भी नहीं है।

विक्रम—मुझे अधिकार नहीं है! अच्छा तो कविता-प्रेम ने मेरा अधिकार भी ले लिया है? हूँ, देखता हूँ। (घण्टे पर मोंगरी मारता है, प्रतिहारी का प्रवेश) कालिदास, चित्ररथ और वीरबाहु

को शीघ्र न्याय-मन्दिर में उपस्थित किया जाय। (प्रतिहारी 'जो आज्ञा' कहकर जाती है विक्रम रोष-पूर्ण मुद्रा में उठ खड़ा होता है।)

महादेवी—(लपककर विक्रम के पैर पकड़ती हुई) क्रोध में न्याय नहीं होता महाराज, वह निर्दोष है, निष्कलंक है! कोप निवारण कीजिए। मुझे प्राणदण्ड दीजिए। लाखों मानवों को खपाकर एक कवि की रक्षा करना चाहिए देव! आपको हो क्या गया है?

विक्रम—(पैर को झटककर) अभी पता चल जाएगा, मुझे क्या हो गया है? वह निष्कलंक है, सच्चा कवि है?... अच्छा देखता हूँ।

महादेवी—(कानों पर हाथ रखकर) ऐसा न कहिए, देव! उसकी वाणी निष्कलंक है।

विक्रम—सब ढकोसला है, न्याय-मन्दिर में अविलम्ब पहुँचो।

(पर्दा गिरता है)

दृश्य २

[स्थान—न्याय-मन्दिर, सिंहासन पर मालवगण-मुख्य विक्रम आसीन हैं, एक ओर एक आसन्दी पर महादेवी खिन्न-मना बैठी हैं। विक्रम की त्यौरियाँ बदली हुईं। चित्ररथ, वीरबाहु अपने स्थान पर बैठे हैं, कालिदास के आने की प्रतीक्षा है।]

विक्रम—चित्ररथ!

चित्ररथ—प्रभो! आज्ञा? (उठकर हाथ बाँधे खड़ा होता है।)

विक्रम—वीरबाहो!

वीरबाहु—देव! (उठकर हाथ बाँधे खड़ा होता है।)

विक्रम—तुमने हमारा यश सदा ही कहा है, सुन्दर कहा है; पर हमारी अभिलाषा है कि एक 'महाकाव्य' लिखा जाए।

दोनों कवि—जो आज्ञा, देव!

विक्रम—ऐसा कि मैं अमर हो जाऊँ।

दोनों—आप तो वैसे ही अमर हैं प्रभो, अपने यशः-शरीर से।

विक्रम—यश का वर्णन और भी अमर बनाता है, कवे!

दोनों—सत्य है प्रभो!

विक्रम—अच्छा, महाकाव्य का नाम क्या होगा?

दोनों—(कुछ सोचकर एक दूसरे को देखते हुए) क्या होगा?

विक्रम—'विजय' जोड़कर।

दोनों—हाँ, हाँ देव ! खूब सुझाया—'विक्रम-विजय'।

[कालिदास का प्रवेश, विक्रम तथा महादेवी को प्रणाम करता है, महादेवी उठकर अभिवादन का उत्तर देती है, राजा कनखियों से देखता है। सब यथास्थान बैठते हैं। महादेवी को सिंहासन पर न देख कालिदास स्थिति का अनुमान लगाने का प्रयत्न करता है।]

विक्रम—कालिदास ! तुम महाकवि कब से हुए ?

कालिदास—तुच्छ सेवक हूँ प्रभो ! खान में पड़े हीरे का कोई मूल्य नहीं होता देव, जब तक वह राजमुकुट की शोभा न बढ़ाए।

विक्रम—सीधा उत्तर दो कालिदास !

कालिदास—प्रभु के समक्ष सेवक टेढ़ा कैसे होगा देव, वैसे व्यंग्योक्ति तो कवि का शस्त्र है, उसे वह कैसे छोड़ देगा।

विक्रम—साँप बाँबी में तो सीधा चलता है, कालिदास !

कालिदास—देव ! कालिदास साँप नहीं है और न्याय-मन्दिर बाँबी नहीं है। कालिदास कवि है और न्याय-मन्दिर में उपस्थित है।

विक्रम—(त्यौरी चढ़ाकर) न्याय-मन्दिर में उपस्थित हो कालिदास, इसका तुम्हें ज्ञान है ! अब बताओ कि तुम महाकवि कब से हुए ?

कालिदास—श्रीमान् के चरणों की कृपा हुई जब से।

विक्रम—अच्छा तो आप अपने को महाकवि समझते हैं।

कालिदास—अपने को तो सभी सब कुछ समझते हैं। पर श्रीमान् समझें तब तो..........।

विक्रम—तो तुम हम पर यह आरोप भी लगा रहे हो कि हम तुम्हारे प्रति न्याय नहीं करते अर्थात् अन्याय करते हैं, क्यों?

कालिदास—(चुप)..........।

विक्रम—अर्थात् तुम अपने को महाकवि समझते हो और यह भी धारणा रखते हो कि तुम्हारे प्रति अन्याय किया जा रहा है।

कालिदास—न्यायाधिकरण श्रीमान के हाथ में है।

विक्रम—यही तो आज दिखाना चाहता हूँ, कालिदास!

[महादेवी की ओर घूरता है, वह निचला होठ दबाकर दृष्टि नीची कर लेती हैं।]

विक्रम—अच्छा तो महाकवे, आप 'विक्रम-विजय' नामक महाकाव्य की रचना कीजिए, जिसमें हमारा यश पूर्ण-रूपेण वर्णन किया जाय। स्वीकार है?

कालिदास—(चुप)..........।

विक्रम—तो स्वीकार नहीं?

कालिदास—नहीं प्रभो!

विक्रम—(दाँत पीसकर) स्वीकार नहीं?

कालिदास—(दृढ़तापूर्वक) कदापि नहीं, स्वामी!

विक्रम—भला क्यों स्वीकार नहीं ?

कालिदास—कालिदास नर-काव्य नहीं करता।

विक्रम—अपमान ! मुँह के ऊपर अपमान !! जानते हो विक्रम कौन है ?

कालिदास—शकारि, मालवगण-संस्थापक, मालवगण-मुख्य को भला कौन है जो न जानेगा ?

विक्रम—फिर यही बात काव्य में क्यों नहीं कही जा सकती ?

कालिदास—यह काम कवि का है प्रभो; महाकवि का नहीं। महाकवि चाटुकारी नहीं...........।

विक्रम—सँभलकर कालिदास ! जले पर नमक............।

कालिदास—(विनीत स्वर में) स्वस्थ-चित्त हों प्रभो ! कालिदास कभी अन्यथा नहीं कहता, नहीं कहेगा। प्रभो, महाकवि एक मेघ है, अनन्त सागर से उठकर गम्भीर घोष करता हुआ अनन्त आकाश में फैल जाता है और ऊँचे पर्वत, गम्भीर गर्त, उर्वर-अनुर्वर विना देखे सब ठौर बरसता है।

(महादेवी सम्मोहित-सी होकर नेत्र मूँद लेती है, मुखमण्डल आभा से मंडित हो जाता है। विक्रम कनखियों से देखता है।)

विक्रम—कविता न करो कालिदास, यह शब्द-जाल आज मुझे फँसा न सकेगा। तुमने मेरा अपमान किया है, मेरे न्याय पर आरोप लगाया है, अपना मूल्य आवश्यकता से अधिक आँका है, मैं तुम्हें दण्ड दूँगा।

कालिदास—प्रस्तुत हूँ, प्रभो !

महादेवी—(उठकर) और मैं भी!

कालिदास—(विनीत भाव से) मातेश्वरी! आप काव्य क रक्षा करें, कवि की नहीं! प्रभो यह क्या है?

विक्रम—(व्यंग्यपूर्वक) मातेश्वरी और काव्य! हः हः यह तेरी ही लगाई आग है, जो तुझे, मुझे, इस नारी को, सारे गणतन्त्र को जलाकर भस्म कर देगी।

कालिदास—दण्ड दीजिए, प्रभो!

विक्रम—'विक्रम विजय' महाकाव्य लिखो।

कालिदास—यह न होगा स्वामी, यह न हो सकेगा। देवी रूठ जाएँगी, वरदान वापिस ले लेंगी, और अगर कहीं उन्होंने अग्नि-वर्षा आरम्भ करदी तो उनके राज्य से निकल कर कहाँ जा सकूँगा!

विक्रम—सो तो यहाँ से भी न जा सकोगे!

कालिदास—जब तक अपनी इच्छा है और इच्छा स्वाधीन होते हुए भी स्वच्छन्द नहीं है।

विक्रम—वाल्मीकि ने क्या महाकाव्य नहीं लिखा?

कालिदास—पर राम कहाँ हैं प्रभो? और राम वाल्मीकि से यह कहने कब गये थे कि मेरे विषय में महाकाव्य लिखो?

विक्रम—(दाँत पीसता है, सीधे हाथ की मुट्ठी बाएँ हाथ पर

मारकर) ओह, इतना अपमान ! इतना अभिमान !! डाल दो इसे बन्दीगृह में, जहाँ मेघ की भाँति आँसू बहाया करे।

(कालिदास को बन्दीगृह ले जाते हैं)

महादेवी—(हाथ जोड़कर) क्षमा दो प्रभो, महाकवि निर्दोष है !

विक्रम—चुप हो मूर्खा नारी, तुझे भी बन्दीगृह की एक कोठरी को काला करना होगा। ले जाओ इसे भी !

(पर्दा गिरता है)

दृश्य ३

(स्थान—बन्दीगृह, बराबर बराबर की दो कोठरियों में लौहशलाकाओं के पीछे महादेवी तथा कालिदास दीख पड़ते हैं, महादेवी दीना मलीना और रुक्ष वेष में। कालिदास बन्दी-वेष में, खोया-सा। एक भृत्य का प्रवेश, कालिदास की कोठरी के सम्मुख आने पर।)

कालिदास—(तनिक सिर उठाकर) कौन ? तुम कौन हो भाई ?

भृत्य—नव-नियुक्त भृत्य।

कालिदास—(सोचता हुआ) भृत्य, नवनियुक्त भृत्य। तुम सुसंस्कृत भाषा कैसे बोलते हो, भृत्य !

भृत्य—जानता हूँ इस कारण बोलता हूँ, महाकवे ! फिर भाषा पर किसी का एकाधिकार भी तो नहीं है।

कालिदास—उचित ही कहा भृत्य, तुम समझदार प्रतीत होते हो। अब अच्छी पटा करेगी, थोड़ा मन बहल जाया करेगा।

भृत्य—इसी कारण तो 'महाराज शकारि ने मुझे इधर नियुक्त किया है।

कालिदास—बड़ी अनुकम्पा है महाराज विक्रमांक की, जो इस दशा में भी अपने सेवक का इतना ध्यान रखते हैं।

(भृत्य आँख गड़ाकर कालिदास की मुख-मुद्रा का अध्ययन करता है।)

भृत्य—हाँ, उन्होंने सोचा, आपका और महादेवी का मन बहला रहेगा।

कालिदास—(तेजी से) महादेवी! कहाँ हैं महादेवी? हा! इस अधम के कारण गर्दभिल्लकुल-लक्ष्मी को कितना दुख सहना पड़ा। लांछन की लपट में व्यर्थ ही झुलसना पड़ा।

भृत्य—वे यहीं तो हैं कविवर, पास की कोठरी में।

(आँख गड़ाकर कालिदास के मुख के भावों को पढ़ता है)

कालिदास—(उत्तर को न सुनता-सा) महाराज शकारि विक्रमांक न्यायी तो बड़े हैं, भृत्य!

भृत्य—इसमें कुछ सन्देह भी है क्या?

कालिदास-शङ्का करने को मन तो नहीं चाहता, पर आत्मा यह कहने को विवश है कि ······ ।

भृत्य—कि आपको बन्दीगृह भेजकर महाराज शकारि ने अन्याय किया?

कालिदास—अन्यथा समझे भृत्य, मेरा आशय यह नहीं था। महाराज ने पुण्य-सलिला भागीरथी-सदृश पूतपावनी महादेवी को ······ (कुछ रुककर) क्या बीतती होगी बेचारी पर! (रुककर) भृत्य तुम जानते हो, विरह किसे कहते हैं,

तुम उसकी आग में कभी जले हो ? क्या कवियों ने उसे झूठ-मूठ को ही अग्निरूप माना है ?

भृत्य—(मुँह फेरकर) मैं तो अब भी वियोगी हूँ, महाकवे ! मैंने एक दिन अपने पौरुष का प्रयोग कर अपनी प्रिया को निष्कासन-दण्ड दे दिया।

कालिदास—भला क्यों ?

भृत्य—सन्देह-वश।

कालिदास—सन्देह ! क्या वायु, आकाश, जल-थल सर्वत्र सन्देह ही सन्देह बिखर गया है ? क्यों न हो 'यथा राजा तथा प्रजा'।

भृत्य—महाकवे, मैं स्वामिभक्त सेवक हूँ।

कालिदास—और मैं चाटुकार नहीं हूँ। क्या बिगाड़ा था बेचारी महादेवी ने जो उन्हें इस प्रकार लांछित कर बन्दी-गृह में पटक दिया गया है ?

भृत्य—(स्वर-विपर्यय) जाने दो महाकवे, इस आलोचना में हमें कुछ मिलना नहीं है, उल्टी यह अहितकर ही हो सकती है। आपने विरह की बात चलाई थी, आपको भी.....।

कालिदास—(दीर्घ निश्वास-पूर्वक) क्यों, कवि मानव नहीं है क्या, उसके हृदय नहीं है क्या ?

भृत्य—अधिक व्यवधान अब तो नहीं है कवे ! केवल एक दीवार... ....।

कालिदास—क्यों ? कौन है दीवार के पीछे ? विद्योत्तमा ! कहाँ है ? यहाँ क्यों आई है ? क्या उसने भी कोई अपराध

किया है ? क्या मेरे पीछे महाराज की अवज्ञा की है ? यदि उसने ऐसा किया होगा तो जीवन-भर को उसका परित्याग कर दूँगा। (महादेवी लौह-शलाकाओं के निकट आकर सुनती-सी).... मेरे पास, उसे मेरे पास क्यों नहीं रखा.....................। (भृत्य खिसक जाता है, और महादेवी की कोठरी के सामने से निकलता है।)

महादेवी—परित्याग ! जीवन भर को परित्याग !! भृत्य, ठहरो ! यही तो कहा था न अभी किसी ने ? उससे कहो, क्या पुरुष ने इसके अतिरिक्त कुछ और भी सीखा है ? उससे कहो, तुम पुरुष हो, तुम स्त्री के हृदय की माप नहीं कर सकते, तुम उसकी उलझनों को नहीं सुलझा सकते। तुम उसे अपने हाल पर छोड़ दो। मैं जानती हूँ कि नारी को अकारण ही कितना भुगतना पड़ता है।

भृत्य—अकारण ही भुगतना पड़ता है, नहीं ऐसा नहीं होता होगा, पुरुष क्या ऐसा अन्धा होता है जो.................।

महादेवी—अन्धा होता है या नहीं यह मैं नहीं जानती, पर नारी को भुगतना अधिकांश में अकारण ही पड़ता है।

भृत्य—आप क्या कुछ अपनी बात कहना चाहती हैं ?

महादेवी—अपनी बात कोई यों उछालता नहीं फिरता, भृत्य ! फिर अपने विषय में मुझे कुछ कहना भी नहीं है। क्या तुम बता सकते हो कि महाराज इन दिनों कहाँ हैं ?

भृत्य—(तनिक मुँह फेरकर) यहीं तो हैं देवि !

महादेवी—देवि नहीं, महादेवी कहो।

भृत्य—अपराध का मार्जन किया जाए, महादेवी। सेवक से अनजान में भूल हुई।

महादेवी—अच्छा, यह तो बताओ, महाराज इन दिनों सानन्द तो हैं, प्रजा के हित में रत तो रहते हैं, न्याय में (कुछ रुककर) निष्ठा वैसी ही बनी है?

भृत्य—अपराध क्षमा हो महादेवी, आप न्याय कहकर रुक क्यों गईं? क्या कुछ सन्देह.................।

महादेवी—सन्देह, मुझे शकारि के न्याय में सन्देह? किसी भी नारी को अपने प्रिय में सन्देह करने का अधिकार नहीं है।

भृत्य—एकबार........ ....।

महादेवी—भृत्य, तुम कौन हो? मेरे मर्म पर चोट न करो, उसी एकबार का परिणाम तो मैं भुगत रही हूँ।

भृत्य—फिर अपराध का मार्जन चाहता हूँ, महादेवी। आरम्भ में कही गई पुरुष की कठोरता की बात की संगति आपकी इस दशा से नहीं बैठती।

महादेवी—संगति नहीं बैठती, पर उलझन कहाँ है? प्रेम और श्रद्धा में अन्तर है भृत्य, और दोनों के पात्र भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, दोनों के द्वारा प्रेरित कर्म भी भिन्न हो सकते हैं और उनमें कभी संघर्ष का अवसर भी आ सकता है। यह एक ओर की बात है और यह दूसरी ओर की कि पत्नी को चाहे फिर वह रानी ही क्यों न हो, अवसर देखकर बात

सुझानी चाहिए। प्रेम में द्वैध नहीं रहता, फिर न वह नारी के दर्प को स्थान देता है और न पुरुष के सन्देह को।

भृत्य—समझ गया महादेवी, भूल हुई।

महादेवी—कैसी भूल ? क्या तुमने भी कोई भूल की है, क्या तुमने भी सन्देह में पड़कर किसी का परित्याग किया है, क्या.................?

भृत्य—हाँ महादेवी, यही बात है। (आँखें भर आती हैं)

महादेवी—क्यों, किसका, कब ?

भृत्य—न्याय-मन्दिर में, एक वर्ष पूर्व।

महादेवी—(दृष्टि गड़ाकर देखती है) कौन ! स्वामी !! मेरे प्रियतम !!! (चक्कर खाकर गिर जाती है। विक्रम बन्दीगृह का द्वार खोलकर भीतर जाकर महादेवी को स्वस्थ करता है। पास की कोठरी से यह शब्द सुन पड़ते हैं—'अस्तिकश्चित् वाग्विशेषः' यही तो हैं वे अमर और मधुर शब्द जिसके द्वारा विद्योत्तमा ने मुझे तिरस्कृत कर के भी स्वागत किया था)—

विक्रम—मैं अभी आया प्रिये, तुम यहीं ठहरो। तुम्हारी परीक्षा पूरी हुई। क्षमा दो देवि !

महादेवी—क्षमा कैसी प्रभो ! क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिए, मैंने अविनय किया था। और फिर वाग्देवता के पुजारी को अपने मन के कवि के लिए कभी न कभी सहने को उद्यत रहना ही चाहिए। बिना नैवेद्य की पूजा कहीं देखी है ?

विक्रम—अभी आया प्रिये, तुम यहीं ठहरो (विक्रम हठ-

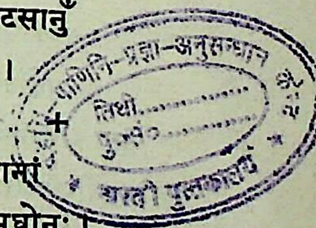
कर कालिदास की वाणी सुनता चला जाता है, अब भी ध्वनि आ रही है—'अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः' 'अस्ति' को कुमारसम्भव ने सार्थक किया, अब 'कश्चित्' की बारी है।' आकाश मेघाच्छन्न है, निबिड अन्धकार फैला है, बिजली रह-रहकर कोंधती है, कवि कालिदास की दृष्टि उधर ही लगी है। कालिदास ने मेघ की ओर एकटक लगाये कहना आरम्भ किया, विस्मृति और तल्लीनता के कारण पास खड़े भृत्य को न देख सका।)

कालिदास—कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु ॥
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥
तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।

(भृत्य की उँगली से मुद्रिका निकलकर बन्दीगृह की कोठरी में आ गिरती है जिसे कालिदास नहीं देख पाता।)

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।

+ + +



जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।
संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः

संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ।

× + ×

श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं ।
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनो बर्हभारेषु केशान् ॥
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रूविलासा ।
हं तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥
त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया ।
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कतुम ॥
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे ।
क्रूरस्तस्मिन्नपि नसहते संगमं नौ कृतान्तः ॥

+ × ÷

संक्षिप्येत क्षणइवकथ दीर्घयामा त्रियामा ।
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातप स्यात् ॥
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभ प्रार्थनं मे ।
गाढोष्याभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥

भृत्य—धन्य-धन्य महाकवे धन्य ! एक श्वास में ही इतने महान् और अमर काव्य की कल्पना !

कालिदास—कौन भृत्य ? तुम कबसे खड़े हो ?

भृत्य—आरम्भ ही से, महाकवे !

कालिदास—बड़ा कष्ट किया तुमने ।

भृत्य—इस रसार्णव में कष्ट ! आज मेरी आँखें खुली हैं, महाकवे !

कालिदास—(किंचित् मुस्कराकर) प्रिया पर से सन्देह निवारण हो गया क्या ?

भृत्य—वह तो हो ही गया महाकवे, साथ ही यह भी ज्ञात हो गया कि महाकवि 'विक्रम-विजय' क्यों नहीं लिख सकते।

कालिदास—पर तुमसे इस बात का सम्बन्ध ?

भृत्य—(कहे जाता है) जो अपनी व्यथा के विष को पीकर जगत् के लिए अमृत-वर्षा करते हैं वे मेघ "विक्रम-विजय" कैसे लिख सकते हैं ?

(आँखें छलछला आती हैं !)

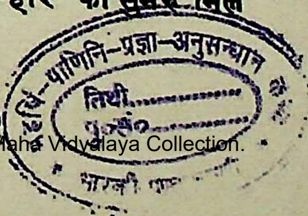
कालिदास—भृत्य तुम कौन हो ? (सहसा पास पड़ी मुद्रिका पर दृष्टि जाती है, उसे उठाकर पढ़ता है—शकारि विक्रमांक) शकारि विक्रमांक ! देव ! अपराध क्षमा हो !!

विक्रम—महाकवे, बाहर आओ; तुम्हें गले से लगा लूँ, मेरे मित्र !

(द्वार खोलता है, कालिदास बाहर आता है)

विक्रम—(ऊँचे स्वर में) महादेवी, दौड़ो ! जल्दी आओ ! मुझे रत्न मिल गया, मुझे मेरे नवरत्न-हार का सुमेरु मिल गया ! परीक्षा पूरी उतरी है।

(महादेवी का प्रवेश)



महादेवी—कहाँ है देव ! किधर है ? प्रणाम करती हूँ, कवे !

कालिदास—गर्दभिल्लकुल-लक्ष्मी की जय हो (हाथ जोड़कर प्रणाम करता है) सेवक पर इतनी कृपा ! वाग्देवता के हेतु इतनी कठोर तपस्या !

(महादेवी मुस्करा-भर देती हैं ।)

विक्रम—यह है महादेवी, यह है मेरा रत्न—महाकवि कालिदास, जिन महाकवि ने अभी-अभी मेघ को जन्म दिया है, जिसमें मेरी, तुम्हारी, अपनी और सारे संसार की विगत, वर्तमान और भविष्य की अमर व्यथामयी कथा से निसृत रस का सागर उमड़ पड़ा है ।

(कालिदास घुटने टेक देता है और विक्रम उसे उठाकर गले से लगाता है–महादेवी सम्मोहित दृष्टि से देखती रहती हैं—आलोकपात—पटाक्षेप ।)

——



हमारे गद्य निर्माता

लेखक

श्री प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, सा० र

प्रस्तुत पुस्तक में भारतेंदु युग, द्विवेदी युग और अ युग के प्रमुख ग्यारह हिंदी गद्य लेखकों की साहित्य शैली और भाषा पर आलोचनात्मक निबंध और 'शैल 'हिंदी गद्य के विकास' की विस्तृत विवेचना की गई है। हाई-स्कूल और इण्टरमीडियेट परीक्षाओं के छात्रों की आवश्यकता को ध्यान में रख कर पुस्तक की रचना की गई है। संयुक्त प्रान्त के शिक्षाधिकारियों ने विभिन्न परीक्षाओं में इसे स्वीकृत किया है।

पृष्ठ संख्या १६२ मूल्य २)

हमारा स्वातंत्र्य संघर्ष

— हाई स्कूल कक्षाओं के लिए —

लेखिका

श्रीमती प्रभा अग्रवाल, एम० ए०

प्रस्तावना लेखक

डा० भगवानदास, डी० लिट्

यों तो बहुत बड़े-बड़े काँग्रेस के इतिहास भिन्न-भिन्न लेखकों ने प्रस्तुत किये हैं परन्तु श्रीमती प्रभा अग्रवाल द्वारा रचित यह छोटा-सा इतिहास अपने ढंग का एक निराला इतिहास है जिसमें सभी आवश्यक और गौरवमय बातें बहुत ही रोचक ढंग से लिखी गई हैं।

पृष्ठ संख्या १७६ मूल्य १॥)

गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा